देव पूजा

ईश्वर की सृष्टि के अद्भुत व्याख्याता पूज्यपाद गुरूदेव शृंगी मुनि कृष्णदत जी महाराज द्वारा विशेष योग समाधि मे,देवयान की आत्माओ को सम्बोधित प्रवचनो का संकलन
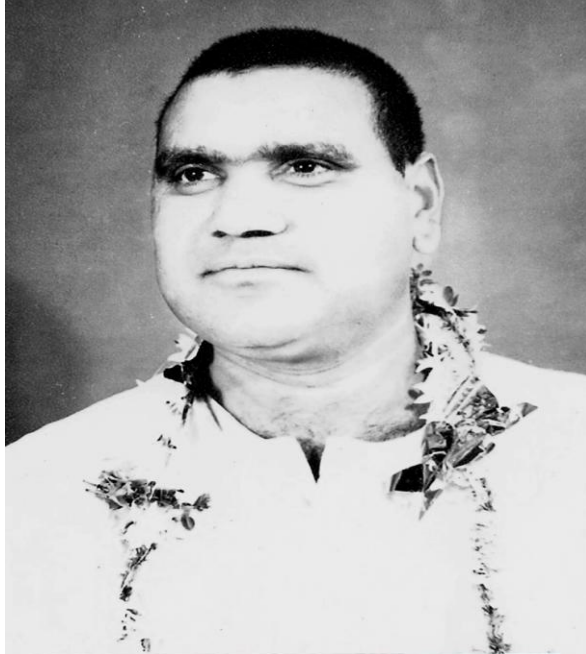
पूज्यपाद गुरुदेव ब्रह्मर्षि कृष्ण दत्त जी महाराज

प्रकाशक :

वैदिक अनुसन्धान समिति (रजि.)

अन्तरजाल सम्पादक : श्री सुकेश त्यागी – अवैतनिक

अन्तरजाल विशेष सहयोग : डा0सतीश शर्मा (अमेरिका) – अवैतनिक

अन्तरजाल पुस्तक संस्करण : प्रथम प्रेषण

सृष्टि सम्वत् : 1,96,08,53,111

विक्रम सम्वत् : मार्ग शीर्ष ,शुक्ल पक्ष , नवमी,2067

गुरुदेव का जीवन

14 सितम्बर 1942,उत्तर प्रदेश के गाजियाबाद जिले के ,ग्राम खुर्रमपुर सलेमाबाद मे एक बालक का जन्म हुआ ।

बालक जन्म से ही एक विलक्षण से युक्त था और विलक्षणता यह कि जब भी वह बालक सीधा, शवासन की मुद्रा मे, कुछ अन्तराल लेटजाता या लिटा दिया जाता तो उसकी गर्दन दायें बायें हिलने लगती , कुछ मन्त्रोच्चारण और उसके बाद पुरातन संस्कृति पर आधारित 45 मिनट के लगभग एक दिव्य प्रवचन होता । बाल्यावस्था होने के कारण, प्रारम्भ मे आवाज अस्पष्ट होती और जैसे आयु बढने लगी वेसे ही आवाज और विषय दानो स्पष्ट होने लगे । पर एक अपठित बालक के मुख से ऐसे दिव्य प्रवचन सुनकर जनमानस आश्चर्य करने लगा , इस बालक की ऐसी दिव्य अवस्था और प्रवचनो की गूढता के विशय मे कोई भी कुछ कहने की स्थिति मे नही था । प्रवचन सुनकर जनमानस आश्चर्य करने लगा , इस बालक की एंसी दिव्य अवस्था और प्रवचनो की गूढता के विषय मे कोई भी कुछ कहने की स्थिति मे नही था ।

इस स्थिति का स्पष्टीकरण भी दिव्यात्मा के प्रवचनो से ही हुआ । कि यह सृष्टि के आदिकाल से ही विभिन्न कालो मे शृंगी ऋषि की उपाधि से विभूषित और सतयुग के काल मे आदि ब्रह्म के शाप के कारण इस युग मे जन्म का कारण बनी । गुरुदेव इस जन्म मे भले ही अपठित रहे,लेकिन शवासन की मुद्रा मे आते ही इनका पूर्वजन्मित ज्ञान,उदबुद्व हो जाता और अन्तरिक्ष–स्थ आत्माओ का दिव्य उद्बोधन ,प्रवचन करते और शरीर की स्थिति यहॉ होने के कारण हम सबको भी इनकी दिव्य वाणी सुनाई देती । इन पंवचनो मे ईश्वरीय की सृष्टि का अद्भुत रहस्य समाया हुआ है , ब्रह्माण्ड की विशालता , सृष्टि का उद्देश्य,विभिन्न कालो का आंखो देखा वर्णन भगवान राम और भगवान कृष्ण के जीवन की दिव्यता का दर्शन क्या कुछ दिव्य न हीं है इन प्रवचनो मे ये किसी भी मनुष्य का,समाज का और राष्ट्र का मार्ग दर्शन करने का सामर्थ्य रखते है ।

20 वर्ष की अवस्था तक ये प्रवचन ऐसे ही जनमानस को आश्चर्य और मार्गदर्शन करते रहे ।

दिल्ली के कुछ प्रबुद्ध महानुभवो ने प्रवचनो की इस निधि को शब्द ध्वनि लेखन उपकरण के द्वारा संग्रहित करके ,पुस्तक रूप मे प्रकाशित करने का निश्चय किया, जिसके लिए वैदिक अनुसन्धान समिति नामक संस्था का गठन किया । जिसके अर्न्तगत सन् 1962 से प्रवचनो को संग्रहति और प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । इस दिव्यात्मा ने पूर्व निर्धारित 50 वर्ष के जीवन को भोगकर सन् 1992 मे महाप्रयाण किया ।

इस अन्तराल इनके 1500 प्रवचन, शब्द ध्वनि लेखित यन्त्र के द्वारा ग्रहण किये गये । जिनको धीरे–धीरे प्रकाशित किया जा रहा है ।वैदिक जीवन और वैदिक संस्कृति का जो स्वरूप इनमे समाया हुआ है । उसके सम्वर्धन , संरक्षण और प्रसारण के लिए हर वैदिक धर्मी के सहयोग की अपेक्षा है । जिससे वसुधैव कुटुम्बकम की संस्कृति से निहित यह महान ज्ञान जनमानस मे प्रसारित हो सके। **वैदिक अनुसन्धान समिति (रजि.)**

देव पूजा

१. देवताओ का पूजन 18–04–1977

जीते रहो!

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भाँति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुण गान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से जिन वेदमन्त्रों का पठन–पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परागतों से ही उस मनोहर वेद–वाणी का प्रसारण होता रहता है। जिस पवित्र वेद–वाणी में उस मेरे देव परम–पिता परमात्मा की प्रतिभा का वर्णन किया जाता है। वह परमपिता परमातमा इतना अमूल्य है, इतना वैज्ञानिक है कि सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर वर्तमान काल तक कोई वैज्ञानिक ऐसा नहीं हुआ जो परमपिता परमात्मा के विज्ञान को मापने वाला हो। क्योंकि वह मापा नहीं जाता। वह सर्वत्र "अभ्यः व्रतम् गत प्रवेः लोकः।" मानो यह सर्वत्र ओत–प्रोत है। जितना भी यह जड़ जगत चैतन्य जगत हमें दृष्टिपात आ रहा है उस सर्वत्र ब्रह्मण्ड में एकाकी चेतना दृष्टिपात आ रही है। मानो वही जड़ में भी चैतन्य में भी दृष्टिपात आता है। तो इसीलिए आज का हमारा वेद का ऋषि क्या कह रहा था? आज के वेद मन्त्र में नाना प्रकार की आभाओं के ऊपर विचार–विनिमय किया जा रहा था।

बेटा! हमारे यहाँ ऋषिजन विद्यमान होकर के अपना–अपना चिन्तन करते रहते थे। और उनके जो चिन्तन करने का क्रम विचित्र और महान माना जाता है। वे यह कहा करते हैं कि चिन्तन करने से ऐसा प्रतीत होता है कि परमपिता परमात्मा वरणीय है। उसको अपने आप वरण करना चाहिए। अपने में धारण कर लेना चाहिए। प्रत्येक मानव संसार में यह उत्सुकता में लगा हुआ रहता है कि मेरे जीवन में आनन्द की तरेगें ओत–प्रोत हो जाएँ। तरंगे मानव को कैसे प्राप्त होती हैं? **आनन्द उस काल में प्राप्त होता है जब आनन्द स्वरूप को अपने में धारण कर लेते हैं।** मेरे प्यारे! आज मैं विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ। केवल उस क्षेत्र में ले जाना चाहता हूँ जहाँ ऋषि–मुनि विद्यमान हो करके अपना चिन्तन करते रहे हैं। अपने को वरण करते रहे हैं। वैदिक साहित्य में नाना प्रकार की विचार धारायें मानव के हृदयों में निहित रही हैं। मानव का हृदय उसे आलिंगन करता रहा है और अपने में उसे धारण करने की आकांक्षा बनी रहती है। आओ मुनिवरो! आज मैं तुम्हें दार्शनिकों के क्षेत्र में ले जाना चाहता हूँ। जहाँ दार्शनिकों ने इस सम्बन्ध में नाना प्रकार की उड़ान उड़ने का प्रयास किया। नाना प्रकार की उड़ान उड़ने वालों में महर्षि यास्काचार्य हुए हैं। महर्षि रेणकेतु हुए और रेवक मुनि महाराज हुए।

रेवक मुनि महाराज एक समय अपने बाल्यकाल में आचार्य सोमकेतु ऋषि महाराज के द्वार पर विद्यमान थे। विचार–विनिमय हो रहा था। वेद का मन्त्र उनके समी था। मन्त्र को लेकर के उड़ान उड़ी जा रही थी। परन्तु शिष्य और आचार्य दोनों विद्यमान हो करके अपना–अपना मन्तव्य प्रकट कर रहे थे। अपनी–अपनी उड़ान उड़ रहे थे। रेवक ब्रह्मचारी ने अपनी उड़ान उड़ना प्रारम्भ किया। उन्होंने कहा कि प्रभु! हमारे इस मानव शरीर में एकाकी आत्मा रहता है। वह सन्निधान मात्र से ही मानव के शरीर को क्रियाशील बनाता रहता है। जिस प्रकार परमपिता परमात्मा की एक अमूल्य चेतना में बद्ध रहने वाला यह ब्रह्माण्ड उस परमपिता परमात्मा के सन्निधान मात्र से क्रियाशील हो रहा है। सर्वत्र ब्रह्माण्ड अपना कार्य कर रहा है। हे प्रभु! जैसे हम परमपिता परमात्मा को सर्वत्र निर्लेप रूप में स्वीकार करते हैं। क्या मानव के शरीर में आत्मा निर्लेप नहीं होता? परन्तु जब ब्रह्मचारी रवेक ने यह प्रश्न किया तो हरितत गोत्र वाले सोमकेतु ऋषि कहते हैं हे ब्रह्मचारी! जैसे मानव के शरीर में एक आत्मा है और आत्मा के सन्निधान मात्र से ही मानव का शरीर क्रियाशील हो जाता है। नाना प्राण अपना कार्य करना प्रारम्भ कर देते हैं। इसी प्रकार यह जो ब्रह्माण्ड तुम्हें दृष्टिपात आता है इस ब्रह्माण्ड में जो चेतना है जिसे हम ब्रह्म कहते हैं, वह ब्रह्मचेतना अपना कार्य कर रही है। उसी के सन्निधान मात्र से जड़–जगत में चेतना है। परन्तु वह उसमें लिप्त नहीं हो पाता। वह निर्लेप रहता है। मुनिवरो इसी प्रकार से मानव के शरीर मे आत्मा भी रहता है परन्तु उसका जो सन्निधान है उसकी जो नियमावली निर्मित है उसी के अर्न्तगत वह अपना कार्य करता रहता है इसीलिये दोनो मे साम्य केवल इतना माना जाता है आभा मे सन्निधान मात्र से ही मानो निर्लेप से रहते है। दोनो ही चेतना निर्लेप रहती है, ऐसा वास्तव में नहीं होता है। क्योंकि अल्पज्ञता होने के कारण वह अपने में निर्लेप रहता हुआ भी सन्निधान में उसमें लिप्त हो जाता है। लिप्त होने पर दोनों की आभा और संज्ञा एक ही सूत्र में पिरोई जाती है।

आज मैं बेटा! तुम्हें उन गुरुओं और शिष्य के सम्बन्ध में विशेषता देना नहीं चाहता हूँ। दोनों ने अपने सम्पर्क में दोनों ने अपने विचारों में यही निर्णय दिया कि अल्पज्ञता और सर्वज्ञता, दोनों का अपने में अन्तर रहता है। परन्तु अल्पज्ञता में एक द्वन्दता मानी जाती है।

तो मेरे पुत्रो! मैं आज तुम्हें विशेष क्षेत्र में नहीं ले जाऊँगा। आज मैं तुम्हें एक ऐसे क्षेत्र में ले जाना चाहता हूँ जो मैंने कई काल में तुम्हें वर्णन किया है। आज मैं उन वाक्यों की पुनरुक्ति भी करता रहता हूँ। विचार–विनिमय भी होता रहता है। जब दोनों का विचार–विनिमय हो रहा था इतने में महाराजा विश्वश्रवा वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने मन ही मन में दोनों ऋषियों को प्रणाम किया। और उनके चरणों में विद्यमान हो करके कहा भगवन्! मैं आपके समीप आया हूँ। सोमकेतु ऋषि कहते हैं हे उद्दालक! तुम्हारा आगमन कैसे हुआ?" उन्होंने कहा, प्रभु! मैं अपनी मुक्ति चाहता हूँ। मैं इस संसार में मोक्ष चाहता हूँ।

उन्होंने कहा, हे ऋषिवर! तुम कैसी मुक्ति चाहते हो? उन्होंने कहा कि मैं प्रवर्तियों को प्राप्त करना चाहता हूँ। जिससे प्रत्येक इन्द्रिय मेरी व्यापकता में रमण करती हुई मोक्ष को प्राप्त कर सकूँ। क्योकि मेरे वंश में कोई ऐसा ब्रह्मचारी नहीं हुआ, कोई भी ऐसा ऋषि नहीं हुआ जिसके जीवन में पवित्रता न हो। जिसके जीवन में मोक्षत्व न हों तो इसीलिए मैं उद्दालक कुल में उत्पन्न हुआ हूँ। मैं अपने गोत्र के आधार पर मोक्ष को चाहता हूँ। आपको यह प्रतीत होगा कि हमारा जो गोत्र वह उद्दालक कहलाता है। परन्तु उद्दालक गोत्र का जो निकास माना गया है। वह 'ददड़' गोत्र माना गया है। और 'ददड़' गोत्र का जो निकास है वह 'हरितत केतु' विशेष गोत्रों से निकास माना है। इसी प्रकार हमारा जो 'हरितत' गोत्र है उसका जो निकास है वह ब्रह्मा के अथर्वा से माना गया है। केवल विचार यह कि कोई भी हमारे यहाँ गोत्रों में ऐसा नहीं हुआ जिसका मोक्ष नहीं हुआ। जो मोक्ष के सम्बन्ध में न विचारने वाला हो। तो इसीलिए प्रभु! मेरी आकांक्षा है, मेरी उत्सुकता है मैं अपने जीवन को मोक्ष में ले जाना चाहता हूँ। में मोक्ष को चाहता हूँ।

सोमकेतु ने कहा कि हे ऋषिवर विश्वश्रवा! मेरी इच्छा तो यह है कि तुम प्रभु का चिन्तन करते हुए याग करो। क्योंकि याग करने से ही तुम्हारे जीवन में महत्ता ओत–प्रोत हो सकती है। मेरे प्यारे! उन्होंने कहा प्रभु! मैं कैसा याग करूँ? उन्होंने कहा व्यापक याग होना चाहिए। मानव के जीवन में नाना प्रकार की आभा होती है। इसलिए व्यापक योग हो। व्यापक विचार हों। व्यापक ही कर्म हो। मानो व्यापक ही चिन्तन होना चाहिए। नाना रूपों में तुम व्यापकता को विचारते रहो। क्योंकि परमपिता परमात्मा व्यापकवाद में रहता है। इसीलिए जो व्यापक है उस व्यापक के लिए आज चिन्तन, कर्म और याग होना चाहिए।

मेरे पुत्रो! जब ऋषि सोमकेतु ने ऐसा वाक्य कहा तो ऋषि कहता है, धन्य है प्रभु! मैं ऐसा ही करूँगा। मैं याग करने के लिए तत्पर हूँ। तो मुनिवरो देखो विश्वश्रवा उद्दालक ने ऋषि आसन को त्याग करके वहाँ से गमन किया। और भ्रमण करते हुए उन्होंने ऋषि–मुनियों की एक सभा एकत्रित की। और उसमें महर्षि विभाण्डक, महर्षि भिण्डी, महर्षि सोमकेतु, महर्षि वैशम्पायन, महर्षि श्वेतकेतु, ब्रह्मचारी कवन्धि नाना ऋषि–मुनियों का उन्होंने एक समूह एकत्रित किया। नाना ब्रह्मवेत्ता थे। ब्रह्म की उड़ान उड़ने वाले थे। उन्होंने कहा, कहो भगवन्! आज कैसे हमें स्मरण किया? विश्वश्रवा ने

कहा, मैंने इसलिए तुम्हें स्मरण किया है कि मैं एक 'साम याग' चाहता हूँ और वह याग मैं मोक्ष के लिए चाहता हूँ। तुम क्या उच्चारण करते हो इस सम्बन्ध में? ब्रह्मचारी कवन्धि कहता है कि महाराज! यह तो बड़ा आनन्द का पर्व है। जो मानव याग करने के लिए तत्पर हो जाये और याग करे। क्योंकि याग में से साम्यता आती है। वह जो समता होती है वही मानव के जीवन को सुन्दर बना देती है। इसीलिए आपका जो कथन है, आपकी जो विचारधारा है वह हमारी विचारधारा से समन्वय कर रही है। मेरे प्यारे! देखो उन्होंने कहा, बहुत प्रिय तो उन्होंनो सर्व द्रव्य का संकल्प कर लिया। जितना मेरे द्वारा द्रव्य है मैं सर्व द्रव्य को देवताओं के द्वारा परिणत करना चाहता हूँ। देवताओं को हूत करना चाहता हूँ।मेरे प्यारे! प्रारम्भिक विचारधारा हुई और उन्होंने एक यज्ञशाला का निर्माण किया। यज्ञमयी वेदी ही में नाना ब्राह्मण उसके समीप विद्यमान हो गए और संकल्प को ले करके और विश्वश्रवा भी यज्ञशाला में विद्यमान हो गए। ऋषियों का समूह था और महर्षि विभाण्डक मुनि महाराज यज्ञ के 'ब्रह्मा' पद को प्राप्त हुए। सुसज्जित निर्वाचन होने के पश्चात ऋषियों से कहा कि मैं यज्ञ के स्वरूप को जानना चाहता हूँ। यह यज्ञ का स्वरूप क्या है यज्ञमय पुरुष क्या है?

देव पूजा

मेरे प्यारे! उस समय विभाण्डक मुनि महाराज कहते हैं हे विश्वश्रवा! यज्ञमय स्वरूप को जानना चाहते हो। यज्ञ के तीन प्रकार के स्वरूप होते हैं सबसे प्रथम देवपूजा होती है। उसके पश्चात संगतिकरण होता है। उसके पश्चात दानेषु होता है। मानो ये तीन शब्द हैं जो यज्ञ में गूथे हुए रहते हैं मानो यज्ञ मे इनकी प्रतिष्ठा रहती है मेरे प्यारे ऋषि कहतें है कि महाराज! यह कैसे माना जाये? उन्होंने कहा सबसे प्रथम देवपूजा है। देवपूजा का अभिप्राय यह है कि हम दो प्रकार के देवताओं की पूजा करने के लिए तत्पर रहते हैं। एक चैतन्य देवता और एक जड़ देवता माने जाते हें। मानो जड़ देवता और चैतन्य देवता कौन हैं? चैतन्य देवता तो ऋषिवर्! जितने बुद्धिमान हैं, ब्रह्मवेत्ता हैं, ब्रह्मनिष्ठ हैं, ब्रह्म में लीन होने वाले हैं, जो उन की सेवा करता है मानो उनकी इच्छाओं की पूर्ति करता है, वह चैतन्य देवताओं का पूजन कर रहा है।

पूजन का अभिप्राय मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें अपनी विवेचना देते हुए कहा था कि पूजा का जो अर्थ है, अभिप्राय है, **सदुपयोग करने का नाम ही उसकी पूजा कहलाई जाती है।** एक बुद्धिमान हमारे समीप आता है। तो हमें उसका सदुपयोग करना है। वह कैसे किया जाये? हम अपने आत्म चिन्तन के सम्बन्ध में आत्मा के सम्बन्ध में, परमात्मा के सम्बन्ध में अपना विचार–विमनिमय करें। जिससे लोक कल्याण हो। जो अपने कल्याण की वार्त्ता महापुरुषों से प्रकट करता है और वह उसका समाधान करता है, वह उसके सम्बन्ध में ऊँची उड़ान उड़ने लगता है। वह देवत्व को प्राप्त हो करके यज्ञमान को देवता बना देता है। मैं तुम्हें संक्षिप्त परिचय देने आया हूँ। वाक्य केवल यह है कि महापुरुषों की हमें पूजा करनी है। जिन महापुरुषों की पूजा करने से मानव के जीवन में सार्थकता आती है। और राष्ट्र और समाज एक सूत्र मे आता है। समाज में एक मानवता का प्रसार होता है। उसके तपे हुए जो उद्‌गार हैं, तपे हुए जो विचार हैं उसको जब मानव ग्रहण करता है तो मानव का अन्तरात्मा गद्‌गद् हो जाता है। उस महापुरुष की वाणी ही बेटा! राष्ट्र और समाज को ऊँचा बनाती है। वे चैतन्य देवता कौन होते हैं? जैसे महर्षि वशिष्ठ और भी नाना ऋषि होते हैं जो आचार्य बन करके ब्रह्मचारियों को सन्मार्ग पर लगाते हैं। अपना सद् उपदेश देते हैं। तो ब्रह्मचारी ऊँचे बनते हैं।

मुझे त्रेता के काल का समय स्मरण है जब भगवान राम महर्षि वशिष्ठ के चरणो में ओत–प्रोत होते थे तो वे ब्रह्मज्ञान की चर्चा करते थे। राष्ट्र को ऊँचा बनाने की चर्चा करते थे! वे यह कहा करते थे कि प्रभु! यह संसार ऊँचा बनाना चाहिए। मेरे प्यारे! **"मानव का व्यापक कर्म मानव को धर्म में ले जाता है और संकीर्ण कर्म मानव को पाप में ले जाता है।"** उस समय कर्मों के ऊपर विचार–विनिमय हो रहा था।

भगवान राम कहते हैं "मैं यह जानना चाहता हूँ कि मानव जड़वत स्थिति को भी प्राप्त होता रहता है अथवा नहीं?" ऋषि वशिष्ठ कहते हैं "हे राम! मानव तो जड़वत स्थित को सदैव प्राप्त होता रहता है। क्योंकि जितने प्रकृति के गुण इसमें प्रवेश कर जाते हैं उतना मानव जड़ता को प्राप्त होता रहता है। जड़ता आती रहती है जितने चैतन्य के गुण इसमें प्रवेश कर जाते हैं, परमात्मा के गुण प्रवेश कर जाते हैं उतनी ही चेतनता प्राप्त होती रहती है। मोक्ष के मार्ग को जाता रहता है।" मेरे प्यारे! यह विचार–विनिमय हो रहा था इतने में ही उनके आश्रम में एक कीड़ा क्रीड़ा कर रहा था। जब वह क्रीड़ा कर रहा था तो ऋषि से भगवान राम करते हैं, "हे भगवन्! हे ऋषिवर! मेरे पूज्यवाद गुरुदेव! मैं यह जानना चाहता हूँ यह, जो कीड़ा आश्रम में क्रीड़ा कर रहा है इसने कौन सा ऐसा कर्म किया है?" उन्होंने कहा "हे राम! जब से सृष्टि का प्रादुर्भाव हुआ है, सृष्टि का निर्माण हुआ है यह कीड़ा तीन समय इन्द्र की उपाधि को प्राप्त कर गया, परन्तु उसके पश्चात भी यह कीड़ा का कीड़ा ही है।" मेरे प्यारे! कर्म का जो चक्र है वह इतना विचित्र है। उन्होंने कहा "प्रभु! इसने कौन–सा ऐसा कर्म किया।" उन्होंने कहा "यह इन्द्र जब बन गया, मानो 101 याग करने वाला इन्द्र बनता है वह राजाओं का अधिराजा बनता है परन्तु राजा बन जाने के पश्चात उसके अपने जीवन की जो धाराएँ हैं, तरंगें हैं उन तरंगों को यह महान नहीं बना पाते। राष्ट्रीय क्षेत्र में संलग्न हो करके यह निम्न श्रेणी को प्राप्त होते हैं। जब यह उदान अपनी आत्मा को ले करके, कर्म के क्षेत्र को ले करके चलता है तो उस समय वह जो संकीर्णता है, वे अव्यापक जो कर्म है उसके साथ रहते हैं। उनके आधार पर निम्नता को प्राप्त होता हुआ आगे चल करके और भी निम्न बन जाते हैं। परिणाम यह होता है कि ये कीड़े बन जाते हैं। दो–मुखे बन जाते हैं और अपने–अपने आँगन में क्रीड़ा करते रहते हैं। परिणाम यह होता है कि इन्द्र की उपाधि इनकी समाप्त हो जाती है। यदि वे इन्द्र के जीवन में अपने जीवन को यागमय बनाते रहें, याग करते रहें क्योंकि यागमय जीवन होना चाहिए तो उनकी इन्द्र की उपाधि निम्नता को न प्राप्त होकर ऊर्ध्व गति को प्राप्त हो जाती है।"

मेरे प्यारे! देखो, जब उन्होंने कहा तो राम मौन हो गए। परिणाम क्या? मेरे प्यारे! गुरू के लिए जो शिष्य प्रतिभाशाली है। और शिष्य के लिए गुरू प्रतिभाशाली है। मेरे प्यारे! दोनों एक–दूसरे में देवता कहलाते हैं। शिष्यों का कर्तव्य है कि अपने देवता का पूजन करते रहें। वे देवता कौन हैं? आचार्य हैं। वे देवता कौन हैं? जो वमन करते हैं और उस वमन को पान करने वाला ब्रह्मचारी कहलाता है। मेरे प्यारे! मुझे बहुत पुरातन काल में मेरे पुत्र महानन्द जी ने यह वाक्य कहा था कि आचार्य गुरु जो वमन करता है तो शिष्यों को पान कर लेना चाहिए। बहुत पुरातन काल में हमने यह कहा कि वास्तव में अपने पूज्यवाद गुरुओं का जो वमन है हम उसे पार करने आए हैं। जिससे मानव के जीवन में निरभिमानता आती है। निवृत्तता आती है। वे व्रती बन जाते हैं। यह कौन सा वमन है? जो आचार्य विद्यालय में शिक्षा प्रदान कर रहा है। वह अपने विचारों को दे रहा है जिन विचारों को उसने अध्ययन के द्वारा, तप के द्वारा जिसको उन्होंने निगला है अब शिष्यों के समीप उस विद्या का वह वमन करते हैं। और शिष्य उसे अपने में ग्रहण करते हैं। शिष्यजन एक पंक्ति में विद्यमान हो करके अपने को ऊँचा बनाते हैं। उसका परिणाम क्या होता है उनमें नम्रता आती है। यौगिकता आती है। भव्यता आ जाती है। और मेरे पुत्रो! राष्ट्र, समाज के लिए वह महान बन जाता है।

चैतन्य देवता

विचार–विनिमय क्या? राष्ट्र बुद्धिमानों के ऊँचा बनता है। मेरे पुत्री! मैंने बहुत पुरातन काल में कहा था वे जो चैतन्य देवता हैं वे राष्ट्र का निर्माण करते हैं। राष्ट्र उन्हीं से ऊँचा बनता है। वह राजा का निर्वाचन कर देते हैं। वेद का ऋषि कहता है कि पंच याज्ञिक होते हैं, वे ही वशिष्ठ का निर्माण करते हैं। मेरे प्यारे! जब राष्ट्र का निर्माण होता है निर्वाचन होता है तो पंच याज्ञिक हैं जो ब्रह्मपुत्र कहलाते हैं। ब्रह्मविद्या को धारण करने वाले होते हैं। वे जब राष्ट्र का निर्वाचन करते हैं, वशिष्ठ का निर्वाचन करते हैं। मेरे प्यारे! वशिष्ठ महापुरुष को कहते हैं। राजा को कहते हैं। हमारे यहाँ

वशिष्ठ के नाना पर्यायवाची शब्द माने जाते हैं। वशिष्ठ ब्रह्मवेत्ता को भी कहते हैं। वशिष्ठ परमात्मा को भी कहते हैं। महापुरुषों में जो विशिष्ट होता है उसको भी वशिष्ठ कहते हैं। "वह राजा वशिष्ठ होता है जो समाज को, प्रजा को ऊँचा बनाने में संलग्न होता है।" वे जो पंच याज्ञिक हैं वे उसका निर्माण करते रहते हैं। तो मेरे पुत्रो! विचार–विनिमय केवल यह है कि वे देवता कहलाते हैं। हमें देवताओं का पूजन करना है। पूजन का अभिप्राय यह है कि वे समाज को, संसार को ऊँचा बनाने में लगे रहते हैं। इसीलिए हमें उनकी सेवा करनी चाहिए। उनके उद्‌गारों को अपने में धारण करने का नाम बेटा! चैतन्य देवताओं की पूजा कहलाई जाती है।मैंने बहुत पुरातन काल में अपना वक्तव्य देते हुए कहा था कि वे जो चैतन्य देवता हैं वे ही तो समाज को ऊँचा बनाते हैं और मानवता को मानवता में भरण कर देते हैं। मेरे प्यारे! वे चैतन्य देवता हैं।

जड़ देवता

मेरे प्यारे! अब जड़ देवताओं की विवेचना करने वाला मीमांसक क्या कहता है? जब बाल्यकाल में हम अपने आचार्य के समीप विद्यमान होते थे तो उस समय अपने पूत्यपाद गुरुओं से कहा करते थे कि हम प्रातःकालीन याग में देव पूजा का वर्णन आता है। हम देव पूजा करने के लिए तत्पर हैं, हे प्रभु! यह जो देवताओं की पूजा है उनमें देवताओं का पूजन तो हमने किया है परन्तु हम जड़ देवताओं का पूजन करना चाहते हैं। हम जड़ की कैसे पूजा करें?

उन्होंने कहा हे पुत्र! तुम जड़ की पूजा करना चाहते हो देवताओं की तो हमारे चहाँ पंचीकरण की पूजा कहलाई जाती है। पंचीकरण की पूजा का अभिप्राय क्या है ? मेरे प्यारे! जैसे पृथ्वी है। यह पृथ्वी हमारी जननी कहलाती है। जैसे माता के गर्भस्थल से पृथक् हो करके वह मानव माता की आभा को प्राप्त होता रहता है परन्तु पृथ्वी अपने में उसे धारण कर लेती है। वह जननी है। नाना प्रकार के पदार्थों को देती है। पदार्थों को पान करके बेटा! वह बालक माता के गर्भ से पृथक होकर के वह इस पृथ्वी माता वसुन्धरा के गर्भ में प्रवेश करता है और नाना प्रकार के खाद्य और खनिजों को प्राप्त करके अपने जीवन को उज्जवल बनाता रहता है, पवित्र बनाता रहता है। वह माँ बसुन्धरा कहलाती है। वह पृथ्वी कहलाती है। वह देवता कहलाती है।

देवता कैसे? मानो इसके गर्भ में जब नाना वैज्ञानिक प्रवेश करते हैं तो नाना अग्नि का भण्डार दृष्टिपात होने लगता है। वह अग्नि 'ब्रह्म लोकः' कही गई है। अग्नि भण्डार में क्या कर रही है? जल को शक्तिशाली बना रही है जिन जलों से वाहन गति करते हैं बेटा! जिनसे वायुयान गति करते रहते हैं बेटा! जिनसे पुष्पक विमान गति रहते हैं। पृथ्वी में नाना यन्त्र गति करते हैं। समुद्रों में नाना यन्त्र गति करते रहते हैं। बेटा! यह सब कहाँ से प्राप्त होता है? पृथ्वी के गर्भस्थल से यह सब खनिज कहलाता है। कहीं बेटा! स्वर्ण की धातु का निर्माण हो रहा है। कहीं रत्न जैसी धातुओं का निर्माण हो रहा है। मेरे प्यारे! पृथ्वी के गर्भ में नाना प्रकार के खाद्यों का प्रायः निर्माण हो रहा है। उसको मानव पान करता है तो मानव का जीवन उज्जवल बनता है। हे पृथ्वी माता! 'तू पृथ्वी है, तू 'द्यो–रसी' कहलाती है। मानो तू द्यू के देवताओं को रस देने वाली है। यह वसुन्धरा है। यह गौ कहलाती है। यह धेनु कहलाती है। नाना प्रकार के पर्यायवाची शब्द इसमें ओत–प्रोत रहते हैं। आज मैं बेटा तुम्हें पर्यायवाची शब्दों में ले जाना नहीं चाहता हूँ। केवल विचार यह है कि पृथ्वी माता कहलाती है।

पृथ्वी की पूजा

इस पृथ्वी का सदुपयोग करने का नाम बेटा! पृथ्वी की पूजा कहलाई जाती है। पूजा का अभिप्राय यह है कि इसका सदुपयोग करना, इसमें जितने गुण हैं उन गुणों को लाना है, उन गुणों को धारण करना है। मेरे पुत्रो देखो जैसे यह नाना प्रकार के पदार्थों को देती रहती है इसी प्रकार मानव को भी इसका सदुपयोग करके इसके गुणों को धारण करना है। इसको प्राप्त करके वैज्ञानिक नाना प्रकार की अव्याहत गतियों को प्राप्त करते रहते हैं। जैसे वैद्यराज अपनी स्थली को त्याग करके वह माता पृथ्वी के आँगन में प्रवेश करता है। पृथ्वी के गर्भ मे जो नाना प्रकार की वनस्पतियाँ हैं उनके गुणो को अंकित करता रहता है । गुणों को अंकन करता हुआ वैद्यराज बन जाता है। वैद्य राज बन करके वह औषधियों का पान करता है, जिससे मानव के जीवन में प्राण शक्ति आती है। वह सब खाद्य कहलाता है, हे वैद्यराज! तू अश्वनी कुमार बन करके तू अनुसन्धान करना, अनुसन्धान करके उसको उपयोग में लाने का नाम बेटा! उस पृथ्वी माता की पूजा कहलाई जाती है।

आओ मेरे प्यारे! देखो सर्वत्र यही पूजा है। आज मैं पूजा के सम्बन्ध में विशेषता तुम्हें देना नहीं चाहता हूँ। इस पृथ्वी देवता को हमारे यहां अजेय कहते है। जो बेटा इसको जान लेता है वह ससांर मे निराशा को प्राप्त नही होता वह अजेय रहता है उसको कोई विजय नहीं कर सकता मुझे बहुत पुरातन काल में अरण्य ऋषि से इस विद्या का अध्ययन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। आचार्य हमें यही शिक्षा देते रहे कि संसार में पूजक बनो। भिन्न–भिन्न प्रकार की पूजा है। उसका उपयोग ही उसकी पूजा कहलाई जाती है। मेरे पुत्रो! जब अजेय–मेघ याग करने वाला वैज्ञानिक उसके गर्भ में प्रवेश करता है। तो नाना खनिजों को जानता रहता है। मेरे प्यारे! वह कैसा अजेय बनता है? नाना प्रकार के जलों को जानकर के वह नाना प्रकार के वाहनों का निर्माण करता है और नाना प्रकार के वाहनों का निर्माण करके वह चन्द्रमा की ओर गति कर रहा है। कोई वाहन सूर्य लोक को गति कर रहा है। कोई बुध लोक को जा रहा है। मानो कोई ध्रुव–मण्डल में गति कर रहा है। परिणाम यह होता है कि वह मुनिवरो! अजेय बन जाता है। जैसे वैज्ञानिक माता वसुन्धरा को जान करके अजेय–मेघ यज्ञ कर रहा है। वह अजेय है। संसार में उसको कोई विजय नहीं कर सकता। क्योंकि वह वैज्ञानिक है। वह नाना प्रकार के यन्त्रों को जानता है परन्तु जानता कहाँ है? पृथ्वी के गर्भ में प्रवेश करने के पश्चात हे माता पृथ्वी, तू वास्तव में हमारा कल्याण करने वाली है। हमें अपने जीवन की आभा को प्रकट कराती रहती है। कि मेरे प्यारे! वह जो अजेय है, पृथ्वी है, उसके गर्भ में नाना प्रकार की धारा उत्पन्न हो रही हैं। नाना तरंगें उत्पन्न हो रही हैं। उन तरंगों को जो जान लेता है बेटा! वह राष्ट्र और समाज को ऊँचा बनाता हुआ वैज्ञानिकता को प्राप्त करता हुआ वह संसार को विजय कर लेता है। मेरे प्यारे! वह पृथ्वी मण्डल को विजय कर लेता है। पृथ्वी का शासन उसके द्वारा पर हो जाता है। तो यह बेटा! पृथ्वी माता की पूजा कहलाई जाती है।

जल की पूजा

पूजा का अभिप्राय मैंने बहुत पुरातन काल मे बेटा! वर्णन किया। परन्तु आज भी मुझे स्मरण आ रहा है। मुनिवरो! जैसे जल है। जल की हम पूजा करते हैं। मानो हम नाना समुद्रों के आँगन में प्रवेश करते हैं। हम उसकी पूजा करना चाहते हैं। समुद्र के तट पर विद्यमान हो करके मानव पूजा करता है और यह कहता है। "हे जलदेवता! तू जलम है। तू शीतल है। तू अमृतमय है। अमृत को धारण कराके हमें इस सागर से पार ले चल।" मानो एक पूजक भक्त यह कह रहा है। परन्तु अभिप्राय क्या? वह कैसे पार ले जायेगा? वह समुद्र कैसे ऊँचा बनायेगा हूं? हमें मेरे प्यारे! देखो वह जल है। **जल को हमारे यहाँ संगतिकरण भी कहते हैं।** बिखरे हुए परमाणुओं को एकत्रित करने वाला जल है। जल जैसे शीतल होता है ऐसे ही प्रभु से याचना करते हैं जल देवता से हे जल देवता! तू शीतल है। तू अमृत है। जब तेरा पान करते हैं तो हमारा कण्ठ भी अमृतमय बन जाता है। हमारे नेत्र भी अमृतमय बन जाते हैं। हमारी वाणी भी अमृतमय बन जाती है। हे जल देवता! तू धारण कराता है।

मानव शरीर का निर्माण

माता के गर्भस्थल मे एक बिन्दु का प्रवेश होता है एक बिन्दु है वह जल है बहने वाली वस्तु का नाम जल कहलाया जाता है वही जल का बिन्दु है। मेरे प्यारे! माता के गर्भस्थल में वही जल शक्तिशाली बन करके, वनस्पतियों का जल उसमें ओत–प्रोत होकर के माता–पिता नाना वनस्पतियों को पान कर रहे है। वही जल है मेरे प्यारे! बिखरे हुए परमाणुओं को एक सूत्र में लाता है। मानव का निर्माण भी उसी से होता है। बेटा! नाना अस्थियों का निर्माण हो रहा है। चक्षुओं का निर्माण होता है। प्रत्येक इन्द्रियों का प्राणतत्व से निर्माण हो रहा है। आयुर्वेदाचार्य यह कहता है कि वही जल का बिन्दु अर्थात् रज और वीर्य दोनों अपने रूप को समाप्त कर देते हैं। जड़ रूप में औषधियों के रस में माता के गर्भ में वह रस जब प्रवेश करता है तो माता के गर्भ में तीन माह तक वह रस परिपक्व बनता है। उसको तपाया जाता है। वह तपाता रहता है। अग्नि की तरंगों में, प्राणों की तरंगों में तपाता रहता है। मानो चतुर्थ माह का जब प्रारम्भ होता है तो मेरे प्यारे! सबसे प्रथम परमाणु चलते हैं और सबसे प्रथम चक्षु का निर्माण करते हैं। उसके पश्चात द्वितीय परमाणु चलते हैं तो श्रोतों का निर्माण करते हैं। उसके पश्चात रसना का निर्माण होता है। उसके पश्चात मेरे प्यारे! नाना अस्थियों का निर्माण करके इन्द्रियों का निर्माण होना प्रारम्भ होता है। प्रारम्भ हो करके मुनिवरो! **चतुर्थ माह के अन्तिम सप्ताह में गर्भाशय में सर्व मानव के शरीर का निर्माण हो जाता है।**

मेरे प्यारे! वही जल है जो समुद्रों में ओत–प्रोत है। वह जल ऊर्ध्व गति को प्राप्त हो करके मेघ–मण्डल के रूप में बनते हैं और जब मेघ–मण्डल बन जाते हैं तो धीमी–धीमी वृष्टि होती है। वह मानो सूक्ष्म बन करके कृषि के लिए वही जल है जो सुन्दर बना रहा है। मानव के जीवन को आभा में प्रकट कर रहा है। हम उस जल का सदुपयोग करना चाहते हैं। मेरे प्यारे! उस विज्ञान को जानना और व्यापकवाद में प्रवेश होने का नाम इसकी व्यापकता है, और वही उस जल का पूजन कहलाया जाता है। आज हम जल का पूजन करना चाहते हैं। जल की पूजा में लाना चाहते हैं। वह जल है, अमृत है। मानव जब पान करता है वेद का ऋषि कहता है "अमृततरण मसि स्वाहा" जल ही मेरा ओढ़ना है और जल ही मेरे नीचे का आसन है। मेरे प्यारे! मानव जब अन्न का पान करता है तो प्रारम्भ में जल का पान करता है। वेदमन्त्र का उच्चारण करके पान करता है, क्योंकि जल ही उसका आसन हो गया। मानो अन्न का देवता है। वे उस आसन पर विद्यमान होते हैं, वह इसका विछौना है। मानो वह उसका आसन है। मुनिवरो! अन्त में वह तीन आचमन करता है। भाव यह है कि जल हो मेरा ओढ़ना है। जल ही मेरा आसन है। मेरे प्यारे! अन्न को मध्य में करता हुआ जल से ही अन्न को परिपक्त बनाया जाता है। वही रसों में परिणत हो करके हमारे शरीर में जो नाना प्रकार की नस–नाड़ियाँ हैं, बेटा! उनमें वह जल प्रवेश करता है और प्रवेश करता हुआ जल ही है जो मानव के जीवन को संगठित करके रस प्रदान कर रहा है। मानव की रसना को ऊँचा बना रहा है।मेरे प्यारे! बाह्य–जगत को शीतल बना रहा है। बाह्य–जगत में भी परमाणु होते हैं जो वातावरण को महान बना रहा है। उस विज्ञान को जानने का नाम उसके व्यापक स्वरूप को जानने का नाम बेटा! वह जल की पूजा कहलाई जाती है।

पूजा का अभिप्राय बेटा! क्या है? मैंने बहुत पुरातल काल में तुम्हें निर्णय देते हुए कहा था कि यह जल ही है जो हिमालय से ले करके समुद्रों में गति कर रहा है। मेरे प्यारे! यह जल ही है जो पृथ्वी को शीतल बना रहा है। जल ही है मेरे प्यारे! जो पृथ्वी के अन्तर्गत मेखला वन करके देवत्व को प्राप्त कर रहा है। परिणाम क्या कि पृथ्वी एक यज्ञशाला है। तो यज्ञशाला की मेखला क्या है? वह समुद्र है। एक समय सोमकेतु मुनि महाराजा याग कर रहे थे। याग करते समय वह जल सींचन कर रहे थे। जब जल सींचन कर रहे थे तो मेघ केतु ऋषि बोले कि महाराज! यह क्या कर रहे हो? उन्होंने कहा कि मैं जल की परिक्रमा कर रहा हूँ। मैं समुद्र की परिक्रमा कर रहा हूँ। मेरे प्यारे! मेखला में जो जल का आह्वान होता है। अग्नि से वनस्पतियों में से जो विषैले परमाणु उत्पन्न होते हैं तो उनको वह निगलता रहता है। हे मानव। तू इस संसार में आया है परन्तु विष ही उगलता रहता है। कहीं क्रोध के द्वारा, कहीं काम के द्वारा, कहीं मानो मोह के द्वारा वह जो विष तेरे हृदय से गति करता है उसकी उदीचीदिक् मानो उदीची को गति करके और समुद्र के आँगन को प्राप्त होता है। क्योंकि समुद्र उन विषैले परमाणुओं को निगलता रहता है और शुद्ध परमाणुओं को दे करके तेरे जीवन का संचालन कर रहा है।

मेरे प्यारे! देखो, वह जो जल है वह देवता है। वह कैसा देवता है? उसका तुम्हें पूजन करना है। जल को हमें शोधन करना है। जल कैसे शोधन करता है प्राणी? मेरे प्यारे! उसका उपयोग करता है। नदियों से नाना प्रकार की शाखाओं को ले करके वह अन्न को उत्पन्न करता है। जल ही अन्न का प्राण है। मुनिवरो! जल ही उसमें ओत–प्रोत हो करके नाना प्रकार के अन्न को उत्पन्न करता है। पृथ्वी के गर्भ में भी जल है जो नाना रूपों को ले करके नाना रूपों में संसार को उत्पन्न करता रहता है। नदियों में जल भ्रमण कर रहा है। अन्तरिक्ष में, मेघों में परिणत कर रहा है। मानव उसका जब सदुपयोग करता है तो मेरे प्यारे! देखो वह जल की पूजा कहलाई जाती है।

मुझे स्मरण है बेटा! जल की पूजा करने वाले ऐसे गायक हुए हैं। जब राजा नल मुनिवरो! गान गाते थे, भगवान कृष्ण भी गान गाते थे तो गान गाने से ही मेघों के मेघ उत्पन्न हो करके वृष्टि हो जाया करती थी। मेरे पुत्रो! वह उस का पूजन है। मैं इस सम्बन्ध में तो कल ही विचार प्रकट करूँगा कि मानव जल की वृष्टि कैसे करा सकता है। आज का विचार–विनिमय क्या है? "हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए परमात्मा को सन्निधान मात्र से ही उससे चेतनता को प्राप्त करते रहें।" परमपिता परमात्मा की आभा को जानते रहें। बेटा! हम देवताओं की पूजा करते रहें। कल मैं यागों के सम्बन्ध में विश्वश्रवा के याग में जो प्रश्न हो रहे थे, मानो प्रश्न प्रारम्भ था देवताओं की पूजा का। उस प्रश्न को मैं कल उच्चारण करूँगा। आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह "हे मानव! तू देवताओं का पूजन कर। देवता तुझे अपने में अपनाते हुए देवता बना देंगे।" इसीलिए तू देवत्व को प्राप्त कर। कल मैं अग्नि देवता के, जल देवता के सम्बन्ध में प्रकट करूँगा कि इनका उपयोग क्या होना चाहिए। आज का विचार–विनिमय समाप्त। अब वेदों का पाठ होगा।

18 अप्रैल, 1977 निर्मल वेदान्त सम्मेलन अमृतसर

२. अग्नि ओर जल का ब्रह्म सूत्र 19–04–1977

जीते रहो!

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भाँति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुण गान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से जिन वेद–मन्त्रों का पठन–पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परागमों से ही उस मनोहर वेद–वाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेद–वाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की प्रतिभा का वर्णन किया जाता है। क्योंकि प्रत्येक वेद मन्त्र उस परमपिता परमात्मा की गाथा गा रहा है अथवा उसका वर्णन कर रहा है। उसका ज्ञान और विज्ञान इतना नितान्त है कि उस मनोहर देव की आभा में यह सर्व ब्रह्माण्ड ओत–प्रोत हो रहा है। हमने इससे पूर्व वाक्यों में तुम्हें निर्णय देते हुए कहा था कि सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर के वर्तमान के काल तक कोई वैज्ञानिक ऐसा नहीं हुआ जो परमपिता परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान को मापने वाला हो। क्योंकि वह सीमा मे आने वाला नहीं है। वह सीमा से रहित है। मेरे प्यारे! वह सीमा में बद्ध नहीं होता। सीमा उसके अन्तर्गत रहती है। तो इसीलिए हम परमपिता परमातमा को ज्ञान और विज्ञानमय दृष्टिपात करते रहते हैं। जब हम वेद मन्त्रों का गान गाने लगते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे परमपिता परमात्मा एक सूत्र रूप में रहता है और सूत्र बनकर के बेटा! यह सर्व ब्रह्माण्ड उस एक ही सूत्र में पिरोया हुआ है। जिस भी आँगन में तुम दृष्टिपात करोगे वहाँ तुम्हें चेतन सा दृष्टिपात होता रहेगा।

देव पूजा

मेरे पुत्रो! इसीलिए हमारा वेद मन्त्र और ऋषि–मुनियों का एक ही मन्तव्य रहा है कि हम परमपिता परमात्मा की प्रतिभा को जानने के लिए सदैव तत्पर रहें। और उसकी प्रतिभा इतनी महान है वह मानव को बारम्बार प्रेरणा देती रहती है। प्रेरित करती रहती है। क्योंकि उसी के सनिनधान मात्र से बेटा! ब्रह्माण्ड गति कर रहा है। मानो सर्वत्र जो गति दृष्टिपात आ रही है वह मेरे उस देव की है। वह मेरे देव के सन्निधान मात्र से ही यह सर्व ब्रह्माण्ड ऋत् और सत् में दृष्टिपात आ रहा है। बेटा! यह ऋत् और सत् की आभा में मानो उसी के अन्तर्गत यह गतिशील हो रहा है। जब नाना प्रकार के लोक–लोकांतरों की कल्पना करने लगते हैं तो एक मण्डल दूसरे का सहायक बना हुआ है। एक लोक दूसरे का सहायक बन करके मानो एक सूत्र में पिरोया सा दृष्टिपात होने लगता है। तो मेरे पुत्रो! आज मैं इस क्षेत्र में विशेष चर्चा तुम्हें प्रकट करने नहीं आया हूँ। केवल विचार यह है कि हम अपने देव की आभा का गुण–गान गाते रहें। क्योंकि प्रत्येक वेद मन्त्र उसकी गाथा गा रहा है। तो इसलिए हमें उस महान देव की उपासना करनी है।

आज का हमारा वेद मन्त्र क्या कह रहा था कि प्रत्येक मानव को संसार में याज्ञिक बनना चाहिए। यज्ञ करना चाहिए। हमारे ऋषि–आचार्यों ने बेटा! यह कहा है कि प्रत्येक वस्तु, प्रत्येक जो व्यापक कर्म है उस सर्व का नाम यज्ञ माना है। तो जितना भी याग पर हमारा जीवन होगा, व्यापक हमारा चिन्तन होगा, व्यापक हमारा कर्म होगा, व्यापक चिन्तन करने की आभा होगी उतना ही मुनिवरो! संसार रूपी यज्ञशाला में विद्यमान होकर के हम उतना ही सुन्दर याग कर सकते हैं। तो मेरे पुत्रो! मैं याग के सम्बन्ध में तुम्हें विवचेना देता जा रहा था। विचार–विनिमय प्रारम्भ हो रहा था कि महाराजा विश्वश्रवा यज्ञ कर्म करने के लिए तत्पर हो गए और जब यज्ञ कर्म करने लगे तो उससे द्वितीय जब दिवस आया तो महर्षि विभाण्डक मुनि महाराज से यही कहा कि महाराज! यज्ञ कर्म करने से पूर्व मैं आपको अपनी गाथा प्रकट कर रहा हूँ। हमारे यहाँ कोई भी वाक्य मिथ्या नहीं उच्चारण होता। क्योंकि हमारे वंश में कोई भी मानव मिथ्यावादी नहीं हुआ। वे सदैव अपने जीवन को एक आभा में सुगंठित करते रहे हैं। और सत्य में ही अपने जीवन को ले जाने का प्रयास किया है। ब्रह्मा से लेकर के मानो उद्दालक तक जितने भी गोत्र हुए हैं उन सर्व में मानो ब्रह्मवेत्ता पुरुष होते चले आए हैं और वे ब्रह्मवेत्ता ब्रह्म की उड़ान उड़ते रहते हैं। ब्रह्म से पिरोया हुआ यह ब्रह्माण्ड मानो उसको दृष्टिपात करते रहे हैं। उसको अनुभव में लाते रहे हैं।

आध्यात्मिक याग

आज मैं तुम्हें एक वाक्य प्रकट कराता हूँ। मेरे पुत्रो! महर्षि विश्वश्रवा उद्दालक कहते हैं कि जब हमारे यहाँ देखो उन्नीसवीं परम्परा में वंश में एक 'स्वेकांत' ऋषि हुए हैं। मानो वे भारद्वाज गोत्र में जब प्रवेश करते थे तो वहाँ ब्रह्मवेत्ताओं की चर्चा होती रहती थी। उन दोनों का ब्रह्मयज्ञ प्रारम्भ रहता और दोनों ब्रह्मयागी बन करके ब्रह्म की उड़ान उड़ते रहते थे। एक समय उन्होंने यह कहा कि ब्रह्म क्या है? तो स्वकान्तम् भारद्वाज ने यह कहा ऋषिवर! परमात्मा की आभा को, परमात्मा के विज्ञान को तुम जानते हो? उन्होंने कहा मैंने प्रभु! आचार्यों से श्रवण किया है। मैं उन्हें विशुद्ध रूप से नहीं जानता हूँ। तो भारद्वाज जी कहते हैं, हे ऋषिवर! यह जो परमपिता परमात्मा है मानो चारों चरणों में उसकी आभा दृष्टिपात आती है। कहीं–कहीं आठों चरणों में उसकी आभा दृष्टिपात आती है। कहीं–कहीं बारह चरणों में उसकी आभा दृष्टिपात आती है। क्योंकि ब्रह्म के षोड्स पद होते हैं। उन्हीं षोडस् पादों से एक माह में षोडस् कलाएँ होती हैं और वह षोडस् कलाओं वाला चन्द्रमा कहलाता है जो सोम की वृष्टि करता है। मानो वही षोडस् कलाओं वाला अमावस के पश्चात प्रतिपदा से ले करके पूर्णिमा तक और पूर्णिमा से अमावस तक एक माह में यह षोडस् कला कहलाती हैं। इन षोडस् कलाओं वाला जो चन्द्रमा है वह सोम की वृष्टि करता है। वह अमृत को देता रहता है। मानो षोडस् कलाओं को जानने वाला मानव अमरावती को प्राप्त होता रहता है। वह अमरावती को क्या, वह ब्रह्म को व्यापक रूप में षोडस् कलाओं में दृष्टिपात करके, उनको जानकर के वह अमृत पुत्र कहलाता है। वह ब्रह्मवेत्ता बन जाता है। ब्रह्मनिष्ठ होकर के ब्रह्म में लीन हो जाता है। ऐसा भारद्वाज ने जब निर्णय किया तो मुनिवरो! देखो उद्दालक का हृदय शांत हो गया। उन्होंने कहा कि महाराज! धन्य है। उन्होंने कहा, यह आध्यात्मिक याग कहलाता है। जो प्रत्येक मानव को करना चाहिए। प्रत्येक मानव जब आध्यात्मिक याग कर्म करने में तत्पर हो जाता है तो चिन्तन उसका विशुद्ध बन जाता है तो मानव अपने में यह अनुभव करने लगता है कि मेरी आत्मा का उत्थान हो रहा है। आत्मा का याग कैसे करना है? मेरे पुत्रो! सबसे प्रथम जो आत्मा के याग की आहुति है वह सत् है, द्वितीय जो आहुति है वह सत्य के ऊपर मीमांसा है, तृतीय जो आहुति है मेरे प्यारे! दोनों सत्य की मीमांसा करता हुआ मानव जब उसमें तल्लीन हो जाता है। वह यज्ञमान की तीसरी आहुति कहलाई जाती है। तो विचार–विनिमय क्या? मेरे पुत्रो! विश्वश्रवा ने जब ऐसा कहा तो महर्षि विभाण्डक कहते हैं धन्य है ऋषिवर। तुम्हारा जो मन्तव्य है वह बड़ा महान है, गम्भीर है, चिन्तनीय है। इसलिए हमें उसका चिन्तन करना है।

जल की पूजा

मुनिवरो! देखो ,महर्षि विभाण्डक मुनि महाराज से उन्होंने यह कहा कि महाराज! देवताओं के पूजन के सम्बन्ध में आपने मानो कुछ वाक्य प्रकट किए हैं। आज पुनः से मैं उन वाक्यों को जानना चाहता हूँ। तो मेरे पुत्रो! महर्षि विभाण्डक मुनि कहते हैं, हे विश्वश्रवा! याग का सबसे जो प्रथम चरण है वह देव–पूजा कहलाया जाता है। प्रत्येक मानव को देव–पूजा करनी है। चैतन्य और जड़–देवताओं का पूजन करना है। इससे पूर्व काल में बेटा! मैंने कुछ चैतन्य देवताओं के सम्बन्ध में अपने कुछ विचार प्रकट किए। आज भी मैं पुनः से उन्हीं विचारों पर तुम्हें वाक्य प्रकट कर रहा हूँ। जल हमें संसार का संगतिकरण कराने वाला है वह देव पूजा में मानो उसकी पूजा में परिणत होना चाहता है। प्रत्येक मानव उसकी पूजा करना चाहता है। हमने बहुत पुरातन काल में पूजा के सम्बन्ध में अपने वाक्य प्रकअ किए थे **कि पूजा का अभिप्राय यह है कि उसके स्वरूप को जानना है। जो उसके स्वरूप को जानता है वह उसकी पूजा करने वाला है।** तो मेरे पुत्रो! आज हम तुम्हें उच्चारण करने वाले हैं कि हमारा जो मानवीय जीवन है उसका इस जल से कितना घनिष्ठ सम्बन्ध है। मेरे प्यारे! हमारी जो नाना प्रकार की अस्थियाँ हैं, प्रत्येक जो इन्द्रियाँ हैं उनका जो समन्वय हुआ है, उनका जो मिलान हुआ है, उनका जो संगतिकरण हुआ है वह केवल जल के माध्यम से हुआ है। तो हमें इसलिए जल को जानना है। यह जल कैसा अमृतमय है? जल को सोम कहते हैं जब मुनिवरो! इस सोम का अध्ययन करते हैं। तो ऋषिजन मन और प्राण दोनों का संगतिकरण करा देते हैं। जब योगी इसका संगतिकरण कर लेता है तो वह देव पूजा स्वतः बन जाती है। मानो उसी के द्वारा योगेश्वर तप को प्राप्त करता है, वह योगी बन जाता है।

सोमरस

मुनिवरों! के ऊर्ध्वा में एक पिपाद नामक स्थान कहा जाता है। उस स्थान में सोम की वृष्टि होती रहती है। जब योगीजन मन और प्राण का दोनों का संगतिकरण करके , ब्रह्मरन्ध्र में यह दोनों की आभा रमण करती है। इसका संगतिकरण होता है तो ब्रह्मरन्ध्र गति करने लगता है वह पंखुड़ियाँ जब गति करने लगती है तो वह जो पिपाद स्थान है उसमें से मानो कुछ अमृतमयी वह धारा ब्रह्मरन्ध्र में आनी प्रारम्भ होती है। उसी रस का स्वादन ऋषिजन पान करते हैं तो उसको सोमरस कहा जाता है। मेरे प्यारे! वह जो सोमरस है उसको कौन पान करता है? उसको पान करने वाले ऋषिजन होते हैं, योगीजन होते हैं। मेरे पुत्रो! ब्रह्मरन्ध्र की जब पंखुड़ियाँ गति करती हैं तो सोम के परमाणु अपनी आभा में जब गति करने लगते हैं तो बेटा यह ब्रह्माण्ड उसके लिए खिलवाड़ हो जाता है। वह ब्रह्म की आभा को साक्षात्कार दृष्टिपात करते हैं। वह कौनसा रस है, वह कौनसा आनन्द है? बेटा! उसको सोमरस कहा जाता है। सोम कहते हैं जिसमें मुनिवरो! सोम्यता प्राप्त होती है। रस कहते हैं पान करने वाले पदार्थ को। जो सोम्यतास को पान करता है उसे अमृतमय कहते हैं। उसको देवताजन, ऋषिजन अमृतमय को प्राप्त करके अपनी आभा में रमण करते रहते हैं।

देव पूजा

आज मैं पुत्रो! तुम्हें यौगिक क्षेत्र में नहीं ले जा रहा हूँ। आजका विचार केवल क्या है? आज का हमारा वेद का ऋषि क्या कह रहा है? वेद का आचार्य यह कहना चाहता है, कि "हे मानव! तू अपने जीवन में अपनी मानवता को ऊँचा बनाने के लिए सोमरस को पान करने वाला बन। सोमरस को पान करने वाला देवता कहलाता है। वह देवताओं की सभा में सुशोभित होता है।" तो इसीलिए तू सोमरस को पान करने वाला बन। आज मैं पुत्रो! तुम्हें सोम की विशेष चर्चा नहीं करना चाहता हूँ। विचार क्या कि सोम को पान करने वाले मेरे प्यारे! जल को अच्छी प्रकार जानते हैं। उस जल को मानो मेघों से नहीं, वायुमण्डल से अपनी वाणी का इससे समन्वय कर देते हैं। वाणी का सम्बन्ध मेरे प्यारे! **"शीतला नेति क्रिया"** से होता है। **"नैति क्रिया"** से जब होता है, योगी को जब सोम की, जल की आवश्यकता होती है तो वह खेचरी मुद्रा करता है और उससे वायुमण्डल में जो परमाणु मानो जल के परमाणु उन्हें अपने में शोषण करके, अपने में धारण करके वह पिपासा समाप्त कर लेता है। वह जल के परमाणुओं को अपने में धारण कर लेता है।

वेद मन्त्र से वृष्टि

मेरे पुत्रो! देखो वह क्या है? मेरे पुत्रो! वाणी से उसका रसना से सम्बन्ध होता है। मुझे स्मरण आता रहता है बेटा! एक समय स्वेतकेतु और भृंगी ऋषि महाराज दोनों इसके ऊपर अध्ययन कर रहे थे । उनके हृदय की आकांक्षा थी कि हम अपनी वाणी से मेघ को उत्पन्न करना चाहते है तो मुनिवरो देखो वह वाणी से कुछ मन्त्रो का उच्चारण कर रहे थे। वेद मन्त्र यह कहता था कि मानव जब अपनी वाणी से उच्चारण करता है तो मानो वह मेघों को उत्पन्न करा करके उससे वृष्टि करा देता है। तो कहते हैं कि जल का जो माध्यम हमारे शरीर में बना हुआ है वह प्राणों में से कोई न कोई प्राण है। व्यान प्राण रस को ले करके ही सर्व शरीर में भ्रमण करता रहता है। जब व्यान प्राण भ्रमण करता रहता है तो वह जैसे शरीर में रहता है उसी प्रकार ब्रह्माण्ड में नाना प्रकार के जलों को ले करके वह वायु मण्डल में इस अन्तरिक्ष के जल का और पृथ्वी के समुद्रों के जल का दोनों का समन्वय करके मानो उससे धीमी–धीमी वृष्टि प्रारम्भ हो जाती है। इसलिए जो योगीजन इस रहस्य को जानना चाहते हैं, जो मानव इसको जानना चाहते हैं वह उदान प्राण और समान दोनों का मिलान करना जानते हैं। मानो वह व्यान की उसमें संपुटता को धारण करा करके उससे समन्वय करके मुनिवरो वह अपने प्राणायाम को करते हैं और उस प्राण की क्रिया में ज्ञान होता है। विवेकपूर्ण संकल्प होता है। और वह संकल्प क्या है कि वेद मन्त्र उनके समीप है। गान गाते रहते हैं और वह प्राण को ऊर्ध्वा में ले जाते हैं। कहीं प्राण को कहीं ध्रुवा में ले जाते हैं। कहीं मानो दक्षिणाय में ले जाते हैं। इस प्रकार प्राण की तरंगें चलती रहती हैं। उन्हीं धाराओं के साथ मुनिवरो! देखो परमाणुओं की आभा उत्पन्न हो रके विचारों का, संकल्प का समन्वय हो करके मेरे पुत्रो! मेघों से सुन्दर वृष्टि का प्रारम्भ होता है। मानो वह जल देवता है। विचार–विनिमय क्या तप के द्वारा उस जल का सदुपयोग कर हम तप की आभा को जानते हुए मेरे प्यारे! तपस्वी बन करके हम उसे देवता स्वीकार करें और उसका पूजन करें।

मुनिवरो !.पूजन का अभिप्राय यह है कि जो उसमें क्रिया है, जो उसमें ज्ञान है, जो उसमें विज्ञान है मुनिवरो! उसको हम साकार रूप में लायें। साकार रूप में लाने का नाम ही उसकी पूजा कहलाई जाती है। पूजा के सम्बन्ध में मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें यह निर्णय देते हुए कहा था कि वाणी के द्वारा ही मानव रसों का स्वादन करता है और वे जो रस हैं वे प्राणों की आभा में रमण करते रहते हैं। वह जो रस हैं वह जलम् रूप में रहते हैं। मानो आपो के रूप में रहते हैं। उन जलों को जान करके मानव की रसना जब उसको अनुभव कर लेती है। अनुभव करके मेरे प्यारे! जब उसका निर्णय दे देती है तो यह सब कुछ क्या है? भिन्न–भिन्न प्रकार के रसों का सदुपयोग करना, उनको क्रिया में लाना अपने में अनुभव करने का नाम बेटा! हमारे यहां देव पूजा कहलाई जाती है। हमारे यहाँ मैं जल के ऊपर विशेष चर्चा तुम्हें प्रकट नहीं कराता।

अग्नि की पूजा

मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें यह निर्णय देते हुए कहा था कि संसार में हमें अग्नि की पूजा करनी है। अग्नि भी हमारा देवता है। मानो यह पंचीकरण है ये जड़ देवता कहलाते हैं। इन देवताओं का पूजन करना है। जिन देवताओं के पूजन करने से मानव के जीवन में एक सार्थकता आती है। मानव का जीवन तेजमय बन जाता है। परमात्मा की प्रतिभा का उसे ज्ञान होता है। परमात्मा के द्वारा उसके समीप विराजमान होने के लिए बेटा वह योगश्वर, वह अनुसन्धानवेत्ता, वह देव के देवताओं का पूजक मानो परमात्मा के समीप जाने का प्रयास करता है। मेरे प्यारे! अग्नि देवता कैसा है? बेटा! आयुर्वेदाचार्यो ने तो 85 प्रकार की अग्नि मानी है। परन्तु यहाँ अग्नियों के सम्बन्ध में भिन्न–भिन्न प्रकार के विचार–विनिमय होते रहते हैं। एक अग्नि वह होती है जिस अग्नि में मानव यज्ञमान बन करके याग करता है। एक अग्नि वह होती है जिस अग्नि में मेरी प्यारी माता भोजन को तपाती हैं। एक अग्नि वह होती है जो ब्रह्मचारियों के हृदय में सदैव प्रदीप्त रहती है। एक अग्नि वह होती है जो ब्रह्मवेताओं के हृदय में प्रदीप्त रहती है। एक अग्नि वह होती है जो गार्हपत्य कहलाती है। जो गृहस्थियों के आसनों पर रहती है। एक अग्नि वह होती है जो वानप्रस्थियों के हृदय में प्रदीप्त रहती है। मानव जब सन्यास को प्राप्त होता है वह अग्नि स्वरूप में परिणत होने वाली है। एक अग्नि वह है जो एक स्थान से दूसरे स्थान को मानव को वस्तु को प्रदान करने वाली है। एक अग्नि वह है बेटा! जो नाना प्रकार के परमाणुओं को गति देती है। एक अग्नि वह है जो नाना प्रकार के लोक–लोकान्तरों की परिक्रमा कराती है। एक अग्नि वह कहलाती है जिस अग्नि के सूत्र में बेटा! सर्वत्र ब्रह्माण्ड पिरोया हुआ है। सर्वत्र ब्रह्माण्ड है। मानो सूर्य उसी के तेज से तेजमय बन रहा है। वही तेजमय मेरे पुत्रो! इन पाँच महाभूतों कों अपने में एक ही सूत्र में चेतना में पिरो रहा है। तो बेटा! ये भिन्न–भिन्न प्रकार का अग्नि मानी जाती हैं। जब अग्नि देवताओं के समीप जाते हैं, हम अग्नि देवता का पूजन करना चाहते हैं।

मेरे प्यारे! एक ब्रह्मचारी देवता का पूजन करना चाहता है वह अग्नि की पूजा करना चाहता है। वहा ब्रह्मचारी बेटा! अपनी पोथी को ले करके अग्नि की पूजा करना चाहता है। क्योंकि पोथी के समीप उसमें किसी के विचार हैं। पोथी में किसी को लेखनी है। तो मुनिवरो! देखो वही लेखनी उस ब्रह्मचारी को अपने में परिणत करती है। वही लेखनी विचारों की अग्नि है , उसके हृदय में एक अग्नि प्रदीप्त हो रही है । जो उस लेखनी को पान कर रहा है, अपने में ग्रहण कर रहा है, मानो लेखनी का अध्ययन करता हुआ मन को उसमें संलग्न कराता है तो विचार आता है कि वह अग्नि की पूजा कर रहा है। वह अग्नि क्या है, मानो दोनों अग्नियों का समन्वय हो रहा है। दोनों अग्नियों का मिलान हो रहा है। द्वितीय को जो उच्चारण करने वाला है जो अध्ययन कर रहा है, प्रश्न कर रहा है, मनन कर रहा है एक वह गर्हपत्य नाम की अग्नि कहलाती है। उसमें रमण करता रहता है। अपने विचारों को बेटा! महान उज्जवल बनाता रहता है। कि मैं आज विशाल अग्नि में प्रदीप्त हो गया हूँ। उसी अग्नि से इस बाह्य लेखनी अग्नि से विचार की अग्नि से ब्रह्मचर्य को ऊँचा बना रहा है। जिस ब्रह्माग्नि के द्वारा मेरे प्यारे! ब्रह्मचारी बनते हैं, उस अग्नि को अपने में धारण करते हुए उस अग्नि का स्वतः ही पालन होता रहता है।

मैंने बहुत पुरातन काल में निर्णय देते हुए कहा था कि संसार में बिना अध्ययन क्रिया के, बिना चिन्तन किए, बिना अनुसन्धान किए कोई भी मानव अपने ब्रह्मचर्य को ऊर्ध्व नहीं बना सकता। जब ऊर्ध्व नहीं बनायेगा तो देवता भी नहीं बनेगा। तो इसलिए मुनिवरो! देखों ब्रह्मचारी देवता कहलाते हैं। क्योंकि उनके चिन्तन करने की जो शैली है, चिन्तन करने का जो क्रियाकलाप है वह इतना विचित्र कहलाता है कि मन को शान्ति नहीं दे पाता। केवल एक ही सूत्र में मन को पिरो देते हैं कि ब्रह्मग्नि के ऊपर उसको विद्यमान करा देते हैं। उस ब्रह्माग्नि के ऊपर विद्यमान हो करके बेटा! वह

गार्हपत्य नाम की अग्नि का पूजन करता रहता है। इस प्रकार मुनिवरो! अग्नि के समीप विद्यमान हो करके वह उसके समीप जाता है तो बेटा! यह उस अग्नि की पूजा कहलाई जाती है। आज मैं बहुत गम्भीर रहस्यों में तुम्हें ले जाना नहीं चाहता हूँ।

एक अग्नि वह है जिस अग्नि में यज्ञमान विद्यमान हो करके याग कर रहा है। आहुति दे रहा है। भिन्न–भिन्न प्रकार की आहुति देता है बेटा! मन्त्रों की पुररुक्ति के साथ आहुति देता रहता है। मानो वह आहुतियों से याग करता रहता है। मेरे प्यारे! देखो एक आहुति वह है जो मुनिवरो! ब्रह्मरूपों में रमण करती है। एक आहुति वह है जो राष्ट्र रूपों में रमण करती है। एक अग्नि वह है जो मुनिवरो! साधारण रूपों में रमण करती हैं। मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें निर्णय देते हुए कहा, जो ब्रह्मग्नि की आहुति देते हैं, स्वाहा करते हैं और स्वाहा कह करके विचारते हैं कि हमारा जो शब्द है वह अन्तरिक्ष में गति कर रहा है। वह रमण करता हुआ मानो हमारी वाणी के साथ में हमारे मानव शरीर का आकार बन करके अन्तरिक्ष में जा रहा है। वह जो आकार है वह जो रूप में रमण कर रहा है। एक शब्द में बेटा! वह परमाणु जा रहा है जितने आकार वाला वह प्राणी है जो स्वाहा उच्चारण कर रहा है। शब्द उसके साथ में उसका चित्र अन्तरिक्ष में गति कर रहा है। मानो वह उस अग्नि की धाराओं पर विद्यमान हो रहे हैं। अग्नि की धाराओं पर विद्यमान हो करके वह द्यु लोक को प्राप्त हो रहा हैं। वह अन्तरिक्ष लोको को प्राप्त हो रहा है । मृत लोको को प्राप्त हो रहें है , तो विचार क्या बेटा! वह जो अग्नि का आह्वान है। मानो अग्नि का जो प्रदीप्त होता है वह मानव के जीवन को ऊँचा बनाता है। मानव अपने जीवन की अग्नि को उद्बुध करता है। उद्बुध स्वाहा कह करके कहता है, हे अग्नि तू उद्बुध हो। तू आत्मा के समीप जो ब्रह्माग्नि है जिससे आत्मा चेतता है वह ब्रह्माग्नि से चेतता है। वह ब्रह्माग्नि कौन सी है? जिस अग्नि पर विद्यमान हो करके वह सरस्वती विद्या में परिणत हो जाता है। उस पर विश्राम करने लगता है। परिणाम यह होता है कि अग्नि देवी बन करके रहती है। यह देवी अग्नि कहलाती है। मानो उसका देवी स्वरूप बन जाता है। यह अग्नि की पूजा का अभिप्राय है।

अब मैं बेटा! लोक में आना चाहता हूँ। मैं आध्यात्मिकवाद में तुम्हें ले जाना नहीं चाहता हूँ। केवल अब मैं तुम्हें लोकाग्नि में ले जाना चाहता हूँ। यह अग्नि बेटा! काष्ठ में विद्यमान है। उस अग्नि के सन्निधान मात्र से उस अग्नि को हम प्रदीप्त करते हैं। मानो मिलान से हम प्रदीप्त करते हैं। वही अग्नि मुनिवरो! संगतिकरण में परिणत हो जाती है। वह केवल देव पूजा में तो परिणत रहती है परन्तु उसका संगतिकरण हो जाता है मानो देखो वह अग्नि नाना साकल्य को ले करके वह देव पूजा कर रहा है। वह देव पूजक बन करके साकल्य की आहुति दे रहा है। आहुति दे करके वैज्ञानिक यह विचारता है कि यह जो अग्नि काष्ठ में विद्यमान है यह जो अग्नि प्रदीप्त हो रही है इस अग्नि के ऊपर मेरा अध्ययन होना चाहिए। वह अध्ययन करना प्रारम्भ करता है। जब गम्भीर अध्ययन प्रारम्भ करता है तो उसे यह प्रतीत होता है कि वास्तव में यह जो काष्ठ में अग्नि है इससे मेरी प्यारी माता भोजन तपा रही हैं। मानव तृप्त हो रहा है। वही अग्नि मानव को ऊँचा बनाती है। उसी अग्नि से हम नाना प्रकार के वाहनों का निर्माण कर सकते हैं। वही अग्नि मानव की वाणी बन करके, वाणी के स्वरूप में संकल्प बनकर के लोक–लोकान्तरों में रमण करना प्रारम्भ कर देता है। आओ मेरे प्यारे! आज मैं तुम्हें गम्भीर क्षेत्र में नहीं ले जा रहा हूँ। केवल यह कि इस अग्नि का हमें पूजन करना है। इस अग्नि में हमें सुगन्धि को देना है। सुगन्धि से यह संसार ऊँचा बनता है। वह जो सुगन्धमय जीवन है वही इस अग्नि की पूजा कहलाई जाती है। आज जो मानव अग्नि का पूजन करने वाला यदि अग्नि को 'अभ्रः सुगन्धि' में परिणत नहीं करता, सुगन्धि नहीं ला सकता तो मेरे प्यारे! देखो वहा अग्नि की पूजा नहीं कर रहा है। वह अग्नि का अपमान कर रहा है। वह अग्नि का अग्न्याधान नहीं कर रहा है।

द्यु–लोकों में रमण करने वाली अग्नि है जो परमाणु रूपों में रहती है। वह अग्नि मेरे प्यारे! अन्तरिक्ष में मेघों को ऊँचा बनाती रहती है। वही अग्नि है जो समुद्रों के जलों का उत्थान कराती है। जलों को अपने में धारण कर लेती है। परमाणु रूप से धारण कर लेती है। मेरे प्यारे! यही अग्नि जल का शोधन करती है। शोधन करके विद्युत बन करके उस जल को वृत रूपों को पान कराती है। वह मधुर बन जाता है। मानो उससे अन्न सुन्दर बनता है। वनस्पतियाँ सुन्दर बनती हैं। मेरे प्यारे! अग्नि का ही वह रूप है जो विद्युत बनकर के जलों का उत्थान करता है। हमारे आचार्यों ने बेटा! उस विद्युत का नाम 'शचि' कहा है। इन्द्र की पत्नी का नाम शचि है। मानो इन्द्र कौन है? इन्द्र नाम के वैदिक साहित्य में पर्यायवाची शब्द आते हैं। **"परन्तु यहाँ प्रकरण के आधार पर वायु को इन्द्र कहते हैं। शचि को विद्युत कहते हैं।"** वह जो मेघ–मण्डल है उसको बकासुर कहते हैं। और इन तीनों का मिलान हो करके धीमी–धीमी वृष्टि प्रारम्भ होती है। उससे मेरे प्यारे! नाना प्रकार की वनस्पतियों का जन्म होता है। अन्नाद उत्पन्न होता है। उससे खनिज उत्पन्न होते हैं। उसी से मेरे प्यारे! मानव का जीवन उद्बुद्ध हो जाता है। पवित्र बन जाता है। वह सोम रस में परिणत हो जाता है। वह लताओं का औषध बन करके मानो वीरत्व को प्राप्त होता है।

आओ मेरे प्यारे! आज मैं तुम्हें विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ। केवल विचार यह देने के लिए आया हूँ कि हमें इस अग्नि के ऊपर अनुसन्धान करना है। अग्नि का पूजन करना है। अग्नि के पूजन के सम्बन्ध में मैंने कई लोकोक्तियाँ तुम्हें प्रकट की हैं। अभिप्राय यह है कि अग्नि वाणी कहलाती है। **वाणी का स्वरूप और अग्नि का स्वरूप एक ही कहलाता** है। तो इसीलिए हमें वाणी का पूजन करना है। मेरे प्यारे! वाणी का शोधन करना है। वाणी का शोधन अग्नि के द्वारा होता है। वह ज्ञान रूपी अग्नि कहलाती है। ज्ञान रूपी अग्नि से जब मानव की वाणी बँध जाती है, वह तेजोमयी हो जाती है ज्ञान के द्वारा तो वाणी ही मानव को प्रतिभासित करती है कि यह मानव मधुरभाषी है। यह मानव साम्यवादी है। यह मानव तेजस्वी है। तो मुनिवरो! देखो वाणी के द्वारा वह तेजोमय बन जाता है। जैसे सूर्य नाना प्रकार की किरणों के द्वारा तेजोमय बन जाता है। नाना किरणों से अग्नि को ले करके बेटा! वह नाना प्रकार की किरणें भिन्न–भिन्न रूपों में वह परिणत होती रहती है। उसके भिन्न–भिन्न प्रकार के स्वरूप उत्पन्न होते रहते हैं।

मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें निर्णय देते हुए कहा था बेटा! सूर्य की नाना प्रकार की जो किरणें हैं, कोई किरण मानो विष को उत्पन्न कर रही है। कोई किरणें अमृत को बहा रही हैं। कोई किरणें मुनिवरो! तीखी बनकर के मानव को उत्कृष्ट बना रही हैं। नाना प्रकार की किरणें भिन्न–भिन्न रूपों को धारण करके इस संसार को गतिमान बना रही हैं। मानव की जीवन भी उसी से गतिमान हो रहा है। तो आओ मेरे प्यारे! हमने बहुत पुरातन काल में तुम्हें कहा था बेटा! वे ही किरणें मानव के द्वारा आती हैं। वे ही किरणें एक योगी जो योगाभ्यास कर रहा है उसके द्वारा आती हैं। वे ही किरणें सर्प के द्वार पर जा रही हैं और सर्प के विष को अपने में धारण कर लेती हैं अथवा सर्प उस किरण के द्वारा विष को पान कर रहा है। मेरे प्यारे! वही किरण जब योगाभ्यासी के द्वारा जाती है तो उन्हीं किरणों से तेजोमय को, अमृत को अपने में धारण कर रहा है। बेटा! वे ही किरण हैं जो साधारण प्राणी के द्वारा जा रही हैं। उसे उसका कोई भान नहीं होता। वही किरण है मेरे प्यारे! जो पृथ्वी के गर्भ में जा करके स्वर्ण को तपाती है। वही किरण हैं जो पृथ्वी के गर्भ में रत्नों को तपाती रहती हैं। वे ही किरणें बेटा! पृथ्वी के गर्भ मे जो जल है उसको शोधन कर रही हैं। उसको इतना सूक्ष्म बना देती है कि उससे वाहन गति करते रहते हैं। तो विचार–विनिमय कया? मुनिवरो! देखो यह उस देवता का उस अग्नि का पूजन है। आज जो मानव इतना व्यापक विचारता है पूजा के सम्बन्ध में वह वास्तव में देवताओं का पूजक है और जो देवता का पूजक है वह प्रभु को प्राप्त कर सकता है।

आओ मेरे पुत्रो आज मै तुम्हें व्याख्या देते हुए दूर चला गया हूं विचार–विनिमय यह है कि जो अग्नि है यह कैसा अनुपम देवता है? इसका हमें किन रूपों में पूजन करना चाहिए? मेरे प्यारे! देखो एक मानव रुग्ण है और रुग्ण हो करके वह अग्नि से अपने रोगों को समाप्त करना चाहता है। **तो मेरे प्यारे! देखो मुझे बहुत पुरातन काल में अनुसन्धान करने का सौभाग्य भी प्राप्त होता रहा**

है। मेरे पुत्रो! देखो एक समय भृंगी ऋषि महाराज ने यह अनुसन्धान किया था कि मैं अग्नि के समीप जा करके अपने रोगों को समाप्त करना चाहता हूँ। तो वह मध्यरात्रि में तप रही अग्नि को धारण करता है। देखो, 'पीपल' की समिधा विद्यमान है। पीपल की समिधाओं से, बरगद की समिधाओं से उस अग्नि में वह बालक तपता है। रोगों को समाप्त करता है। उसमें तपता हुआ वह बड़ और पीपल के पंचांगों को पान करता रहता है। उसी अग्नि में तपता रहता है। **चालीस दिवस के तपने के पश्चात मेरे प्यारे! देखो जो उसका 'यक्ष्मा रोग' है वह शान्त हो जाता है।** इस सम्बन्ध में मैं आज वेदों की चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ। केवल यह उच्चारण करने के लिए आया हूँ, पुत्रो! कि भिन्न–भिन्न प्रकार की समिधा मानो देखो उसको सूर्य तपाता है। सूर्य सुखद बनाता है। अग्नि में जब प्रवेश करते हैं। क्योंकि वह अग्नि उसमें विद्यमान है तो मुनिवरो! देखो उस अग्नि के द्वारा मानव रोगों को समाप्त कर सकता है। एक मानव कुष्ठ रोगी हो गया है। वह कुष्ठ को शान्त करना चाहता है। तो मुनिवरो! देखो जब वह अग्नि का एक कुण्ड बनाता है, अग्न्याधान करता है तो वृत्ति ,त्रेतकेतु, अम्रेती मानो इन औषधियों को लेकर के सूर्य उदय होने से पूर्व वह अन्याधान करता है, उद्बुध करता हुआ मुनिवरो! कुछ मन्त्र इस प्रकार के है उनको उच्चारण करता है मुनिवरो देखो **उस अग्नि के समीप जा करके चालीस दिवस याग करने के पश्चात उसका कुष्ठ दूर हो जाता है।** तो परिणाम क्या है? मुनिवरो! देखो , यहाँ परम्परा में ऋषि–मुनि नाना प्रकार के याग के द्वारा रोगों को समाप्त करते रहते थे और वह ऊर्ध्वगति को प्राप्त होते रहे हैं। उनका अनुसन्धान करने का जो कर्म था बेटा! वह बड़ा विचित्र माना गया है। महान और पवित्रता में परिणत रहा है।

आज का विचार–विनिमय क्या हैं? मैं संक्षिप्त परिचय देने आया हूँ और वह परिचय क्या है? कि प्रत्येक मानव को विचारना है कि हमें आज पूजन करना है पूजन करने का अभिप्रायः यह कि इसका सदुपयोग, करना उसको सदुपयोग में लाना मेरे पुत्रो! यह उसकी पूजा कहलाई जाती है। प्रत्येक मानव अग्नि की पूजा करना चाहता है। अग्नि के द्वारा अपने को ऊँचा बनाना चाहता है। वह ऊँचा कैसे बनता है? मैंने बेटा! उसका संक्षिप्त कर्म का परिचय दिया है। तो इसीलिए प्रत्येक मानव प्रत्येक देवकन्या को बेटा! अग्नि के ऊपर अनुसन्धान करना है। जिन विचारों को ले करके बेटा! मानव के जीवन में एक सार्थकता आती है, एक उज्ज्वलता आती है। एक देवत्व आता है। मानो व्यापक कर्म की आभा आती है। तो इसीलिए मुनिवरो! देखो हमें विचारना है, हम देवपूजा में परिणत होना चाहते हैं। यज्ञ का सबसे प्रथम जो क्रिया–कलाप करता है। वह यह जानता है कि मैं देवताओं का पूजन करने के लिए उपस्थित हूँ। देव पूजा, संगतिकरण, दानेषु यह यज्ञ के तीन स्वरूप हैं।

मेरे प्यारे! अब मैं देवताओं की पूजा के सम्बन्ध में कल अपने विचार प्रकट कर सकूँगा। हम आज अग्नि के सम्बन्ध में अपना विचार दे रहे थे। अग्नि को कैसे विचारा जाता है? एक ब्रह्मचारी बनता है अग्नि की पूजा करने से, एक सन्यास को प्राप्त होता है। कल मैं इससे आगे की व्याख्या कर सकूँगा। आज के विचार उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि मानव इस अग्नि के क्रिया–कलाप को जानता हुआ आनन्दवत होता हुआ योगेश्वरत्व को प्राप्त करता है। मानो अमृत को प्राप्त करता हुआ वह षोडश कलाओं मे प्रवेश करता है वह परमात्मा के षोडष कलाओ वाले रूप को जानता है।

आओ मेरे प्यारे! आज का विचार–विनिमय क्या कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए यह अग्नि के स्वरूप, जल के स्वरूप मेरे प्यारे। देखो ब्रह्मसूत्र में पिरोए हुए हैं। हमें ब्रह्मसूत्र को जानना है ब्रह्माग्नि को धारण करना है। ब्रह्माग्नि को धारण करके बेटा! हम ब्रह्म को प्राप्त कर जाते हैं। ब्रह्म की आभा में रमण करने वाले प्रभु के क्षेत्र में हम प्रवेश कर जाते हैं। आओ मेरे प्यारे! आजका हमारा विचार यह क्या कह रहा है? मैं बेटा! व्याख्याता नहीं हूँ। केवल संक्षिप्त परिचय देने आया हूँ। वह संक्षिप्त परिचय क्या है कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए प्रभु की महिमा का गुणगान गाते हुए हम इस संसार सागर से पार हो जाएँ। हम सत्यमय अग्नि को धारण करते हुए संसार सागर से पार हो जाएँ। हम सत्यमय अग्नि को धारण करते हुए अपने मानव जीवन को ऊँचा बनाते रहें। मन और प्राण को एक सूत्र में लाते हुए साधना में परिणत होते रहें। यह है बेटा! आज का वाक्य। अब मुझे समय मिलेगा मैं अग्नि की धाराओं के सम्बन्ध में अपना वाक्य प्रकट करूँगा। आज का विचार–विनिमय क्या कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए एक सूत्र को जानते हुए इस संसार सागर से पार होने का प्रयास करें। हम देवताओं का पूजन करते रहें। यह है बेटा! आज का वाक्य। शेष चर्चाएँ कल प्रकट करेंगे। अब वेदों का पाठ होगा। 19 अप्रैल, 1977 निर्मल वेदान्त सम्मेलन अमृतसर

३. त्यागमयी अग्नि 20–04–1977

जीते रहो!

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भाँति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुण गान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से जिन वेद मन्त्रों का पठन–पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परागतों से ही उस मनोहर वेद–वाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेद–वाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की प्रतिभा का वर्णन किया जाता है। क्योंकि परमपिता परमात्मा प्रतिभाशाली है। उसी की अनन्तता है जो हमें दृष्टिपात आ रही है। एक लोक दूसरे लोकों की परिक्रमा कर रहा है। एक मानव क्या, प्राणी–प्राणी का सहायक बना हुआ है। परन्तु जब लोक–लोकान्तरों में जाते हैं तो वहाँ भी एक मण्डल दूसरे मण्डल की परिक्रमा कर रहा है। एक आकाश–गंगा में नाना प्रकार की निहारिकाएँ हैं। एक निहारिका द्वितीय निहारिका की परिक्रमा कर रही है। तो मानो यह ब्रह्माण्ड ऐसा प्रतीत हो रहा है जैसे मानो इस ब्रह्माण्ड को कोई गति दे रहा है। और उसी के नियन्त्रण में इस ब्रह्माण्ड का जितना प्राणी मात्र है वह मानो अपनी–अपनी आभा में गति कर रहा है। मेरे प्यारे! यहा परमात्मा का कैसा अनुपम ब्रह्माण्ड है। आज कोई मानव यह कहता है कि मोह तथा अभिमान में रमण करता हुआ यह कहता है कि मैं इस ब्रह्माण्ड की सर्वत्र क्रियाओं को जानता हूँ। तो वह मिथ्या उच्चारण कर रहा है। क्योंकि उसे यह भी प्रतीत नहीं है कि तेरे जो नेत्र हैं उसका स्वरूप क्या है? तेरे अन्तरात्मा में जो ज्योति आ रही है उस ज्योति का स्वरूप कैसा है? प्रेरणा को भी नहीं जानते कि प्रेरणा का स्वरूप किस प्रकार का है?

तो मेरे पुत्रो! यह ब्रह्माण्ड तो बहुत विचित्र है। ये नाना आकाश गंगायें तो बहुत ही विचित्र हैं। मानो एक मण्डल दूसरे मण्डल की परिक्रमा कर रहा है। और सहस्त्रों मण्डल हैं जो एक–दूसरे मण्डल की सहायता से गति कर रहे हैं। तो मुनिवरो! यह कितना अनुपम ब्रह्माण्ड है मेरे देव का! आज हम उस अपने देव की आभा में रमण करते हुए अपने में यह स्वीकार करते चले जायें कि हम परमातमा के क्षेत्र में आए हैं और उस देव की उपासना करना हमारा कर्तव्य है। हम उपासना के लिए आए हैं और कर्तव्य का पालन करने के लिए आए हैं। तो मुनिवरो! देखो आज हम तुम्हें ऐसे क्षेत्र में ले जाना चाहते हैं जिस क्षेत्र में जाने से ब्रह्माण्ड की आभा दृष्टिपात होने लगती है। ब्रह्माण्ड में सर्वत्र पंजीकरण है, जो नाना रूपों में दृष्टिपात आ रहा है उसके नाना स्वरूप हमारे समीप रहते हैं। तो मेरे पुत्रो! आज का हमारा विचार, हमारा अध्ययन है, हमारी जो अनुपम धारायें हैं उनके ऊपर जाना हमारा कर्तव्य है हमारी मानवता है। तो आओ, मैं तुम्हें बेटा! मानवता के क्षेत्र में ले जाना चाहता हूँ, जहाँ मानव मानवता की घोषणा कर रहा है। जहाँ देवता देवता बनने का घोष कर रहा है।

मुनिवरो! देखो, मैं तुम्हें उसी यज्ञशाला में ले जाना चाहता हूँ, जहाँ महाराजा विश्वश्रवा उद्दालक और महर्षि विभाण्ड के आदि ऋषि विद्यमान हैं। महर्षि उद्दालक कहते हैं, हे ऋषियो! आप मुझे यज्ञशाला में विद्यमान हो करके कि पंचीकरण का स्वरूप वर्णन करा रहें है । हम देवताओं की पूजा करना चाहते हैं और देवताओं की पूजा वर्णन आप मुझे कर रहे हैं। परन्तु एक समय पुरातन काल में हमारे वंशज सोमकेतु भारद्वाज मुनि के आश्रम में पहुँचे तो यह कहा था कि महाराज यज्ञ कितने स्वरूप माने जाते है ।? मेरे पुत्रो! उस समय सोमकेतु से कहा था कि हे ऋषिवर! तुम्हारा वंश तो

ब्रह्मवेत्ताओं का है। तुम यज्ञ के स्वरूप को जानना चाहते हो। मैं एक आश्चर्य के साथ इन शब्दों को ग्रहण कर रहा हूँ। क्योंकि यज्ञ तो एक ही होता है। अनेकों में नही होता। उसकी जो धारायें हैं भिन्न–भिन्न प्रकार की हैं। जैसे यज्ञशाला में अग्नि प्रदीप्त होती है परन्तु अग्नि की भिन्न–भिन्न प्रकार की धारायें हैं। उन धाराओं को मानव , किन्हीं रूपों में मानव स्वीकार कर सकता है। परन्तु यजवेदी केवल एक ही रहती है। इसी प्रकार परमात्मा का यह जो जगत है यह एक प्रकार की यजवेदी है। इसमें जो नाना प्रकार की तरंगें चलती रहती हैं, नाना प्रकार का जो मानव को आभास होता रहता है उसे किसी भी रूप में मानव स्वीकार कर सकता है। परन्तु जहाँ तक याग का सम्बन्ध है याग तो एक ही है। जिस याग का यज्ञमान आत्मा बना हुआ है। ब्रह्माा परमात्मा बना हुआ है। उद्‌गाता यह पंचीकरण बन करके उद्‌गान गा रहे हैं। यह तो केवल एक ही प्रकार का याग माना गया है।

मेरे पुत्रो! भारद्वाज ने, सोमकेतु से यह कहा, हे सोमकेतु! तुम्हारे वंश में उद्दालक गोत्र में सर्वत्र ही ब्रह्मवेत्ता रहे हैं। ब्रह्म के विचारक रहे हैं। तुम ब्रह्म के विचारों से भिन्न वार्ता प्रकट कर रहे हो उन्होंने कहा, हे भगवन्! इस यज्ञशाला मेमं जब सृष्टि का प्रादुर्भाव हुआ तो चतुष्टय प्रकार का निर्माण होना, प्राणियों का विभक्त होना प्रारम्भ हो गया था। मानो वह एक प्रकार की सुन्दर यज्ञशाला है। उस यज्ञशाला में भिन्न–भिन्न रूपों की आभायें उसमें से उत्पन्न होती रहती हैं। उन भिन्न–भिन्न रूपों को तुम्हें जानना है। भिन्न–भिन्न रूपों में कर्तव्यवाद को गूथ लेना है, जिससे यह याग भव्य और सुन्दर बनता चला जाए। तो विश्वश्रवा कहते हैं कि महाराज! हमारे वंश में सोमकेतु नामक ऋषि हुए हैं। अहा! उद्दालक उनको कहा जाता था वह इस वाक्य को पान करके मौन हो गए, मौन हो करके वे चिन्तन करना प्रारम्भ करने लगे। अपना अग्न्याधान करने लगे। प्रातःकाल में जब अग्नि में आहुति देने लगे, स्वाहा उच्चारण करने लगे तो मानो देखो अग्नि के ऊपर उनका चिन्तन होना प्रारम्भ हो गया। उन्होंने विचारा कि यह अग्नि तो नाना रूपों में प्रदीप्त रहती है। मेरी यज्ञशाला में जो अग्नि प्रदीप्त हो रही है वह कहीं वैष्णव नाम की अग्नि है। कहीं मानो गार्हपत्य नाम की अग्नि बन रही है। उन गार्हपत्य नाम की अग्नियों के नाना प्रकार के भेदन हैं। इसी प्रकार वैष्णव नाम की अग्नि के भी भिन्न–भिन्न प्रकार के भेदन माने गए हैं।

वैश्वानर अग्नि

हमारे यहाँ जो वैष्णव नाम की अग्नि है, उन अग्नि का जब मानव अग्न्याधान करता है तो उस समय वह त्याग करता है। त्यागमयी अग्नि को हमारे यहाँ वैश्वानर कहा जाता है, **विश्व में जिसकी भावना वर्णित हो जाती है तो उसको वैश्वानर कहते हैं।** उस अग्नि में जब मानव प्रवेश करता है वह उज्ज्वल बन जाता है। वही अग्नि है मेरे प्यारे! उसका सूक्ष्म जो स्वरूप है वह वाणी के रूपों में परिणत होकर के व्यष्टि और समष्टि में परिणत होती रहती है। मुनिवरो! वही अग्नि है जिस अग्नि को विचारते–विचारते जिस अग्नि के द्वारा वैज्ञानिकजन क्या, ऋषिजन अपने को त्यागमय बना देते हैं। अग्निमय बना देते हैं। एक मानव यह उड़ान उड़ रहा है। आध्यात्मिक चिन्तन कर रहा है और अग्नि के ऊपर विचार रहा है कि अग्नि कैसी है? उस अग्नि में जो भी तुम मानो प्रवेश कर देते हो उसे यह भस्म बनाकर के सूक्ष्म बना देती है। मानो वह सूक्ष्म जो स्वरूप है वह शीतल हो जाता है। उसका अपना कोई अस्तित्व नहीं रहता। मानो देखो, यज्ञशाला में, प्रदीप्त अग्नि में नाना प्रकार के पदार्थों को प्रदान कर देता है। तो वह भस्म होकर के वह देवताओं का भोज्य बन जाता है। वह सूक्ष्म रूप बन करके, परमाणु रूप बनकर के अपनी–अपनी तरंगों पर प्रत्येक परमाणु विद्यमान होकर के उसको प्राप्त होता रहता है। मानव जब स्वाहा कहता है **तो मुनिवरो! देखो, उस मानव का चित्र शब्द के साथ में अग्नि की वैश्वानर जो तरंगें हैं उन पर विद्यमान होकर के बेटा! वह द्यु–लोक में ओत–प्रोत हो जाता है। वह अन्तरिक्ष में ओत–प्रोत हो जाता है। मेरे प्यारे! वही शब्द है जो चित्त के आँगन में आकर के उसको प्राप्त होता रहता है।** तो परिणाम क्या? जिस प्रकार का उसका विचार–विनिमय होता है, जिस प्रकार की तरंगें उसके मनोनीत हृदयों में होती, हैं उसी प्रकार की यह जो अग्नि विद्युत रूप है यह उसको अपने में धारण करके बेटा! अन्तरिक्ष में परिणत करा देती है। अन्त में वही वार्ताएँ वही शब्द उस मानव को प्राप्त होते रहते हैं। और मानव उसको अपने में धारण करता रहता है। अपने में पान करता रहता है। तो इसी प्रकार यह जो अग्नि है इसको 'वैश्वानर अभ्यासतम्' अग्नि कहते हैं। इस अग्नि के ऊपर मानव परम्परा से विचार विनिमय करता चला आया है। विचारता रहता है। अभ्यस्त होता रहता है।

आओ मेरे प्यारे! मैं अग्नि की धाराओं में तुम्हें विशेष नहीं ले जाना चाहता हूँ। केवल यह वाक्य उच्चारण करने के लिए आया हूँ कि मानव इनका अभ्यास करता रहा है। यज्ञशाला में विद्यमान होकर के अग्नि की तरंगों को जानता रहा है। वही अग्नि द्यु–लोक में ओत–प्रोत बनकर के रहती है जिसमें वैज्ञानिकों ने नाना प्रकार की अग्नियों का अभ्यास किया है। अग्नि को जानकर के मानव मेरे प्यारे! देवत्व को प्राप्त होता है। देवता बन जाता है। उसका शब्द भी द्यु–लोक और अन्तरिक्ष लोकों में ओत–प्रोत होता हुआ मेरे प्यारे! वह उसी को प्राप्त होता रहता है। उसी की आभा में रमण करता रहता है।हमारे यहाँ दो प्रकार के चित्त कहलाते हैं। जो अग्नि की तरंगों पर विद्यमान रहते हैं। एक व्यष्टि चित्त है एक समष्टि चित्त कहलाता है। व्यष्टि चित्त तो मानव के पंच प्राणों के क्षेत्र में रहता है। जो भी मानव कर्म करता है, विचारता है, चिन्तन करता है, वह व्यष्टि चित्त में विद्यमान हो जाता है और जब यह ऊर्ध्व गति को प्राप्त होता है अग्नि की तरंगों को जानकर के अपनी मनोनीत विचारधाराओं को इतना सूक्ष्म बना लेता है। अग्नि का कार्य है भस्म करना। मानव के हृदय की अग्नि चिन्तन अग्नि है, जब वह चिन्तन करता रहता है अपने क्रिया–कलापों का मेरे प्यारे! वह इतने सूक्ष्म क्षेत्र में चला जाता कि समष्टि चित्त को उसका सम्बन्ध हो जाता है। समष्टि चित्त से जब उसका सम्बन्ध होता है और मेरे प्यारे! मानव जब सूक्ष्म से कारण लिंग शरीर में प्रवेश होता है तो वह अपने क्रिया–कलापों के नाना संस्कारो को समष्टि चित्त में प्रवेश करके वह परमात्मा के आनन्द को प्राप्त करता रहता है।` मानव चिन्तन करता है, जो अग्नि के सूक्ष्म स्वरूप को विचारता है वह संसार का वैज्ञानिक बन जाता है। वह परमात्मा की आभा को जान लेता है। संसार का जितना ज्ञान और विज्ञान मानव को दृष्टिपात आता है वह उसके लिए खिलवाड़ बन जाता है। उसके लिए एक वृत्ति बन जाता है।

आओ मेरे प्यारे! मैं अग्नि के स्वरूपों का वर्णन कर रहा था। आध्यात्मिक अग्नि का तुम्हें कुछ वर्णन किया। अब भौतिक अग्नि में आ जाओ जिसमें यज्ञमान विद्यमान हो करके हो करके याग कर रहा है। अपना स्वाहा उच्चारण कर रहा है। अपने मनोनीत हृदय की जो तरंगें हैं वह उनको भस्म करना चाहता है। नाना प्रकार के साकल्य को ले करके उसका सूक्ष्म रूप बना करके अन्तरिक्ष को बेटा! वह भरण करना चाहता है। हे यज्ञमान! तू अपनी यज्ञशाला में विद्यमान हो करके अगन्याधान कर रहा है। अग्नि को उद्‌बुध कर रहा है। तू देवताओं का पूजन कर रहा है। मेरे प्यारे! जितना भी साकल्य है। नाना प्रकार की पुष्टिकारक औषध हैं वह उनको जब अग्नि में वह अग्न्याधान करता है तो उसका सूक्ष्म रूप बन करके वह अन्तरिक्ष में ओत–प्रोत हो करके मेरे प्यारे! देवताओं का भोजन बना जाता है। देवता इस संसार में धीमी–धीमी वृष्टि करा देते हैं। विचार देते हैं। मेरे पुत्रो! मैंने बहुत पुरातन काल में कहा था जब मानव का जिस भी काल में चिन्तन करने का माध्यम सुन्दर बन जाता है, सत्यवादी बन जाता है तो मुनिवरो! देवता प्रसन्न होकर समय–समय पर वृष्टि किया करते हैं। मेरे प्यारे! जब मानव के विचार–विनिमय करने का माध्यम अशुद्ध हो जाता है, स्वार्थमय बन जाता है, मिथ्यावाद बन जाता है और देखो वाणी अशुद्ध हो जाती है उसका क्रिया–कलाप भी अशुद्ध हो जाता है तो वही अशुद्ध विचार लौटकर आता है, मेरे प्यारे! उस समय देवता अपने–अपने आसन पर देववत को प्राप्त नहीं होते। बिना समय के अतिवृष्टि और अनावृष्टि हो करके समाज का विनाश होने लगता है। तो परिणाम क्या? मुनिवरो! देखो ये अग्नि की धाराएँ हैं। अग्नि को धाराओं में तुम शुद्ध उच्चारण करो। शुद्ध वाक्य उच्चारण करो। शुद्ध ही तुम्हारा चलन रहना चाहिए। क्रिया–कलाप भी सुन्दर हो। सत्यमयी हो तो मुनिवरो! देखो वायुमण्डल पवित्र बन हाता है।

देव पूजा

मैंने बहुत पुरातन काल में अपने पूज्यवाद गुरुओं से यह वाक्य पाया कि अग्नि को ऊँचा बनाना है। अग्नि में अग्न्याधान करके मानो देखो वैश्वानर अग्नि की धाराओं को जानने वाला वैज्ञानिक अपने वाहन में विद्यमान हो करके वह सूर्य–लोक की यात्रा करता है। वह मंगल की यात्रा करता है। मैंने बहुत पुरातन काल में बेटा! दृष्टिपात किया। एक समय सोमभानु ऋषि अपने आसन पर विद्यमान थे। उनकी यज्ञशाला में भिन्न–भिन्न प्रकार की यज्ञशाला का निर्माण हो रहा था और उसे प्रत्येक यज्ञशाला में अग्नि प्रदीप्त हो रही थी। और नाना प्रकार की औषधियों का, वनस्पतियों का याग हो रहा था। स्वाहा हो रहा था और जब स्वाहा हो रहा था तो वह ऋषि यह अध्ययन कर रहा था कि कौन सी यज्ञशाला की अग्नि कहाँ जा रही है कौनसी यज्ञशाला की अग्नि क्या–क्या उत्पन्न करती है। उन परमाणुओं को वह नाना यन्त्रों में अपने में धारण करके उससे यन्त्रों का निर्माण कर रहे थे। जो तेजोमयी अग्नि सूर्य में प्रदीप्त रहती है उस अग्नि को वह अपने यन्त्रों में धारण कर रहे थे। उस यज्ञशाला की अग्नि को ले रहे थे। उनकी तरंगों को ले करके उनका समन्वय करके मुनिवरो! देखाा उनसे यज्ञशालाओं में ऐसी औषधियों का आह्वान कर रहे थे, अर्पित कर रहे थे मानो जिनसे पारे की जो अवृत धातु है उसके परमाणु एकत्रित कर रहे थे। और एकत्रित करके उन अग्नियों के द्वारा मुनिवरो! वाहनों का वे निर्माण कर रहे थे। वाहन का निर्माण करके उस वाहन को वे अन्तरिक्ष में त्याग रहे थे। उन यानों को निचले स्थान में गति दी जा रही थी। वह यान मुनिवरो! देखो सूर्य लोक की यात्रा कर रहा था। केवल पृथ्वी के जल को ऋषि ने त्याग दिया। अग्नि के परमाणुओं से ही वाहन गति कर रहे हैं। देखो यज्ञशाला में जो वैश्वानर नाम की अग्नि प्रदीप्त हो रही थी। उस अग्नि में जो परमाणु औषधियों के द्वारा वनस्पतियों के द्वारा उपस्थित हो रहे थे, उनको अपने में धारण करता हुआ उस अग्नि के परमाणुओं से वायुमण्डल में वह ध्रुव की यात्रा कर रहा है। मुनिवरो! देखो ध्रुव यान का निर्माण हो रहा है। मुनिवरो! पारस एक धातु होती है। उसी धातु की सहायता से वह यान मानो ध्रुव की यात्रा कर रहा है।

मेरे प्यारे! मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जिस काल में ऋषि–मुनि केवल सूर्य की किरणों से वाहन को गतिमान करते थे। यज्ञशाला की अग्नि से ही वह परमाणुओं को एकत्रित करके उन परमाणुओं से ही यान गति कर रहा है। जल के द्वारा अग्नि का शोधन किया जाता है ओर अग्नि के शोधन से ही यान का निर्माण हो रहा है। परन्तु देखो आज मैं तुम्हें यह उच्चारण करने आया हूँ पुत्रो! कि परमात्मा का ब्रह्माण्ड, परमात्का का जो विज्ञान है वह कितना अनन्त है। पुत्रो! अग्नि में किसका विज्ञान ओत–प्रोत हो रहा है। अग्नि में विज्ञान मेरे प्रभु का है। मेरे देव का है। मानो, देखो अग्न्याधान हो रहा है। अग्नि प्रदीप्त हो रही है, क्रिया–कलाप हो रहा है। मानव निचले स्थान पर विद्यमान है। यान मुनिवरो! सूर्य लोक में जा रहा है। ध्रुव–मण्डल में जा रहा है। ऋषि अपने आसन पर विद्यमान हो करके अनुसन्धान करते हैं और वेद–मन्त्रों का अध्ययन करते हुए वेदों को विचारते रहे हैं। हमारा वेद का ऋषि अग्न्याधान करता हुआ ओजस्वी बनता रहता है। वह विचारता है जैसे अग्नि है ऐसे ही मानव अपने विचारों को व्यापक बनाता है। वैश्वानर नाम की अग्नि का का पूजन करने वाला मुनिवरो! सन्यासत्व को प्राप्त होता है।

एक समय मेरे पुत्र ने बहुत पुरातन काल में निर्णय के लिए कहा था। उन्होंने प्रश्न किया कि यह जो सन्यास आश्रम होता है इसमें मानव आग्नेय वस्त्रों को धारण कर लेता है। इसका क्या अभिप्राय है? मुनिवरो! यह मानव की सान्त्वना है। मानव जब अग्न्याधान करता है। अग्नि के ऊपर अध्ययन करता रहता है, तो वह विचार रूपी अग्नि में प्रवेश कर जाता है तो अग्नेय वस्त्रों को इसलिए धारण करता है जैसे वाह्य मेरा वस्त्र आग्नेय है। अग्नि अपनी तरंगों से सर्व वस्तुओं को भस्म कर देती है उसी प्रकार जब मानव सन्यासत्व को प्राप्त होता है जैसे अग्नि नाना प्रकार के पदार्थों को सूक्ष्म बना देती है, मेरी जो शारीरिक अग्नि है, मेरी जो चिन्तन करने वाली अग्नि है, मानो मेरी इन्द्रियाँ जो अब तक बाह्य जगत को दृष्टिपात करती थीं वह आन्तरिक जगत के रहस्यों का जान करके आन्तरिक जगत में प्रवेश कर रहीं है। मेरा बाह्य जगत और आन्तरिक जगत दोनों अग्निमय बन गए हैं। क्योंकि मेरे अन्तःकरण में जो नाना प्रकार के दोषारोपण हो रहे थे। काम, क्रोध, लोभ, मोह इत्यादि प्रदीप्त हो रही था, ज्ञान रूपी अग्नि के द्वारा ज्ञान रूपी यज्ञशाला में दग्ध हो गए हैं। मानो इसका स्वरूप आग्नेय बन गया है। जैसे एक लोह को लेकर के अग्नि में प्रवेश कर देते हैं। इसका अग्नि जैसा स्वरूप बन जाता है। इसी प्रकार मेरी इन्द्रियों के जो विषय हैं वह अग्निमय बन गए हैं और मेरा बाह्य जगत भी अग्निमय है। आन्तरिक जगत भी अग्निमय है। मानो दोनों स्वरूप अग्नि में प्रवेश हो करके मैं आग्नेय बन गया हूँ। तो यह वैश्वानर नाम की अग्नि कहलाती है, जिसमें बेटा! सन्यास तपता है। सन्यस्थ व्यक्ति तपता है। तब आग्नेय वस्त्रों को धारण करता है। वह मौन हो करके प्रभु की सृष्टि को व्यापक रूप से दृष्टिपात करता है। और व्यापक में दृष्टिपात करने वाला सन्यस्थ व्यक्ति ब्रह्म की आभा में प्रवेश कर जाता है।

मुनिवरो! हमारे आचार्यों ने ऋषि–मुनियों ने नाना प्रकार की अग्नि का आधान और ध्यान किया है। उस अग्नि में भिन्न–भिन्न आकार विज्ञान की तरंगें हैं। विज्ञान में भी नाना प्रकार की क्रियायें हो रही हैं ,महर्षि भारद्वाज मुनि महाराज ने एक समय उनकी यज्ञशाला में 24 प्रकार की यज्ञशालाओं का निर्माण था। उनमें सहस्त्रों प्रकार की अग्नि का चयन होता रहा। जैसे आयुर्वेदाचार्यों ने 85 प्रकार की अग्नियों का चयन माना है। जब वैज्ञानिक विज्ञान की तरंगवाद के आँगन पर विद्यमान हो गए तो, अग्नि के परमाणुओं का जब विभाजन करने लगे तो ऐसा कहा है ऋषि ने कि उस 85वीं धारा में से अग्नि की 75 धाराओं का निकास हो गया। और वह जो 75वीं धारा थी जब उसका विभाजन किया तो उसमें से 117 धाराओं का निकास हो गया। जब वैज्ञानिको 117वीं धारा का विभाजन किया तो उसमें से पाँच–पाँच सौ तरंगों का जन्म हो गया। जब 500वीं तरंग का विभाजन ऋषियों ने, वैज्ञानिकों ने किया तो सहस्त्रों–सहस्त्रों प्रकार की तरंगें उत्पन्न होने लगीं। तो बेटा! नेति–नेति कह कर ऋषिवर वैज्ञानिक जन अपने से मौन हो गये और यह कहा कि यह तो प्रभु का जगत है। प्रभु का ब्रह्माण्ड है। इसको हम नहीं जान सकते। परिणाम क्या हुआ बेटा! अग्नि कितने प्रकार की है? आज विचारा नहीं जा सकता। **बेटा! ऐसा माना जाता है कि एक रात्रि और एक दिवस में एक मानव के स्थूल शरीर के लिए लगभग 80मण अग्नि उसे प्राप्त होती है** । विचार–विनिमय यह कि सूक्ष्म शरीर की अग्नि भिन्न होती है। उसको कितनी प्राप्त होती है? यह बेटा! वेद मन्त्र आएगा तो मैं किसी काल में प्रकट करूँगा। आज का विचार–विनिमय क्या कि ये जो अग्निया है बेटा! इन अग्नियों पर विद्यमान हो करके मानव का शब्द मानव का चित्र और नाना प्रकार के परमाणु गति कर रहे हैं उसका आदान–प्रदान हो रहा है। वह आदान–प्रदान बेटा! एक परमाणु से नहीं है। नाना परमाणु हैं बेटा अरबों–खरबों प्रकार के परमाणु हैं। अरबों प्रकार की संज्ञायें हैं परमाणुओं की। वह अग्नि की धाराओं पर विद्यमान हो करके गति करती रहती हैं।

परिणाम क्या है मेरे प्यारे! यह जो अग्नि है वह अग्नि 'ब्रह्मवृत' कहलाती है। ब्रह्मवृत धारण करने वाला मानव अपने में यह धारण करता रहता है कि वास्तव में हमारा जीवन अग्निमय होना चाहिए। अग्निमय जीवन को धारण करने वाला मानव, मानवता को प्राप्त हुआ, अग्नि को जानता है वह देवताओं की पूजा करना जानता है। यह देव पूजा कहलाती है। मुनिवरो! देव पूजा के सम्बन्ध में ऋषि बहुत ऊँची–ऊँची वार्ता प्रकट कर रहा है। परन्तु देव पूजा क्या है? इन अग्नियों के सम्बन्ध के ऊपर अनुसन्धान करना, दुरुपयोग न करना, सदुपयोग में लाना, मेरे प्यारे! देखो यह उस अग्नि की पूजा कहलाई जाती है। मेरे प्यारे! वह अग्नि है जो नाना प्रकार की वनस्पतियों के उद्‌बुद्ध कर देती है। बेटा! इस स्थावर सृष्टि को उद्‌बुध कर देती है। जंगम को उदबुध कर देती है। माता के गर्भस्थल में एक अग्नि अखण्ड बन करके रहती है, जो बालक को तपाती रहती है। वह तपायमान होता रहता है। तपने के पश्चात वह माता के गर्भ से पृथक हो जाता है। मेरे पुत्रो! देखो यह संसार सर्वत्र तेजमय है। तेज से तप रहा है। तेजों को प्राप्त हो रहा है। इसी को हमें जानना है। आज मैं तुम्हें विशेष चर्चा प्रकट कराने के लिए नहीं आया हूँ। केवल विचार विनिमय यह देने के लिए आया हूँ कि हमारा जो जीवन है वह कैसे ऊँचा बनता है? कैसे हम परमात्मा को प्राप्त कर सकते हैं? हम सबसे प्रथम देवताओं का पूजन करना जानें। देवताओं के ऊपर हमारा अनुसन्धान होना

चाहिए। वह जो देवता हैं उनको जब मानव जान लेता है देव पूजा करना जानता है तो मेरे प्यारे! वह योगेश्वर बन जाता है। योगेश्वर बन करके परमात्मा के आनन्द को प्राप्त करने का उसे अधिकार प्राप्त होता है।

मेरे पुत्रो! सेसार में जो यह कहता है कि मैं विवेकी बन गया हूँ। मानो वह विवेकी नहीं बना है और जो कहता है कि मैं विवेकी नहीं बना हूँ। इन तरंगों में ओत–प्रोत होने जा रहा हूँ वह तरंगों को जानता है। वह देवपूजा करना जानता है। मेरे प्यारे! वह योगश्वर कहलाता है। जो अपने इन्द्रियों के विषय को व्यापकवाद में ले जाता है। व्यापकवाद में ले जाकर के इस व्यापक संसार को मानो पंचीकरणों को जान करके और वह अपनी इन्द्रियों को आन्तरिक जगत में समेट लेने वाला बनता है। समेट करके जो बाह्य जगत में उसने दृष्टिपात किया वह आन्तरिक जगत में जब उसे भान होने लगता हैं, वह मेरे प्यारे! परमात्मा के स्वादिष्ट आनन्द को प्राप्त करता रहता है। उसे महा आनन्द कहते हैं वह सोमरस का पान करता रहता है। मेरे पुत्रो! सोम रस का मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें निर्णय दिया था जो अमृत मानो चन्द्रमा से प्राप्त होता रहता है जो अमृत तेजोमय का मन्थन हो करके सूर्य को प्राप्त होता रहता है। सूर्य प्रकाश देते हैं। तेजोमय बनकर के वैश्वानर नाम की अग्नि में तपते रहते हैं। मुनिवरो! **जो बाह्य जगत को आन्तरिक जगत में समेट लेता है सहस्त्रों सूर्यों का प्रकाश उस महापुरुष को प्राप्त हो जाता है।** व्यापक जगत में चर्चा करने वाला मानव देवत्व को प्राप्त होता रहता है। आओ, हम सब अपने मनोनीत हृदय में व्यापक विचारने वाले बनें संकीर्णवाद को न विचारें। **इस संकीर्णवाद से मानव की मानवता समाप्त हो जाती है।** मानो संकीर्णवाद बुद्धि का माध्यम बन जाता है। वह मानव इस लोक में पुनः जीवन पुनः मृत्यु को प्राप्त होता रहता है। तो आओ मुनिवरो! हम संकीर्ण विचार न बनायें। व्यापक विचार बना करके व्यापकता में विचारने वाले बनें।

आज का विचार बेटा! अब हमारा यह समाप्त होने जा रहा है। आज के वाक्यों का उच्चारण करने का अभिप्राय क्या? कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुण–गान गाते हुए हम इस संसार सागर से पार हो जाएँ। हम अग्न्याधान करते हुए विचार विनिमय करते हुए नाना प्रकार की यज्ञशालाओं को हम अपने में धारण करते रहें। सबसे प्रथम याग का अभिप्राय देवपूजा है। देवपूजा में ही संगतिकरण हो रहा है बेटा! इसलिए संगतिकरण और देवपूजा को जानना चाहिए। यहाँ प्रत्येक मानव, प्रत्येक देवकन्या, प्रत्येक मेरा भोला ऋषि मण्डल बेटा! सब अपने में चिन्तन करते रहते हैं। चिन्तन करना चाहिए। क्योंकि चिन्तन ही मानव को ऊँचा बनाता है। चिन्तर ही मेरे प्यारे! देखो देववत को प्राप्त कराता हुआ मानवीय क्षेत्र में ले जाता है। व्यापक बना देता है।

कल मेरे प्यारे! मुझे समय मिलेगा तो मैं वायु देवता के सम्बन्ध में कुछ उच्चारण कर सकूँगा। आज मैंने कुछ सूक्ष्म सी चर्चाएँ यौगिक और व्यापक सम्बन्ध में प्रकट की हैं। नाना प्रकार की अग्नियों का चयन करना, नाना प्रकार की अग्नियों को धारण करना उन अग्नियों को अपनी अन्तरात्मा में दृष्टिपात करना यह मानव की यौगिकता है, व्यापकता है, महत्ता है। हम अपने में व्यापक बनकर के, विचार विनिमय करते रहें। अनुसन्धान करते रहें। नाना प्रकार की अग्नि को विचारते रहें। अग्नि त्यागमयी होती है। सन्सासी त्यागमयी अग्नि से ऊँचा बनता है , अग्नेय वस्त्रो को धारण करता है अग्नेय वस्त्र वह क्यों धारण करता है क्योंकि बाह्य जगत मे उसके चिन्तन करने का क्षेत्र व्यापक है, अग्नि का है, विचार का है, ज्ञान का है, और आन्तरिक जगत भी उसका ज्ञान और विज्ञान का है परमात्मा के आनन्द को अनुभव करने का है बाह्य और आन्तरिक जगत एक हों जाये इसलिए आग्नेय वस्त्रों की मीमांसा आचार्यों ने इसी प्रकार की है। अब कल मुझे समय मिलेगा कल बेटा! हम शेष चर्चाएँ प्रकट करेंगे। आज का वाक्य समाप्त। अब वेदों का पाठ होगा। निर्मल वेदान्त सम्मेलन माल रोड अमृतसर

४. प्राण और अपान वायु 21–04–1977

जीते रहो!

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भाँति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुण गान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से जिन वेद–मन्त्रों का पठन–पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परागतों से ही उस मनोहर वेद–वाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेद वाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की महिमा का वर्णन किया जाता है। वह परमपिता परमात्मा कितना महिमा शाली है? उसी देव की महिमा सर्वत्र ओत–प्रोत है। वेद के पठन–पाठन की परम्परा से ही वैदिक ऋषिजन एक–एक मन्त्र को भिन्न–भिन्न प्रकार से उनके पठन–पाठन के क्रम में अथवा विचित्रता में रमण करते रहे हैं। एक समय बेटा! महर्षि प्रवाहण जी ने दालभ्य से यह कहा कि महाराज! आध्यात्मिक–वाद क्या है? तो ऋषि ने उसका उत्तर देते हुए यह कहा कि , जब हम आध्यात्मिकवाद में प्रवेश करते हैं तब साधक संसार की विवेचना करने के लिए तत्पर होता है। बुद्धि का माध्यम जहाँ तक जाता है वहाँ तक वह उनकी विवेचना करता रहता है। और ब्रह्माण्ड की विवेचना को यदि पिण्ड पर वह सुगंठित कर देता है जो ब्रह्माण्ड में किया है वह जब पिण्ड में होती है और उसको वह जान लेता है, तो पिण्ड और ब्रह्मण्डि दोनों सन्तुलित हो करके मेरे प्यारे वह व्यापक ब्रह्म की उड़ान उड़ने लगता है। तो वह जो विचारधारा है उसको हम आध्यातिमकवाद कहते हैं। तो यह दालभ्य जी ने बहुत ऊँचा कहा है कि आध्यात्मिकवाद की विवेचना केवल यही है कि पिण्ड और ब्रह्माण्ड दोनों को एक सूत्र में ला करके दोनों की विवेचना अच्छी प्रकार करे। मानो उसको तप, दम और कर्म में जो परिणत कर देता है उसको हम आध्यात्मिकवाद कहते हैं।

मुनिवरो! देखो आज मैं आध्यात्मिकवाद के क्षेत्र में तो तुम्हें नहीं ले जा रहा हूँ। केवल यह वाक्य प्रकट करने के लिए आये हैं कि हम सर्वत्र प्राणी आत्म–चिन्तन के लिए आये हैं। ऋषि–मुनि विद्यमान हैं। आत्म–चिन्तन प्रारम्भ हो रहा है। आत्मा की विवेचना आत्मा का जो तारतम्य है मानो, पिण्ड और ब्रह्माण्ड की आभा में रमण करने वाला है। तो मुनिवरो! देखो हम बहुत पुरातन काल में कहा करते हैं "शारीरिक अनुशासन का नाम तप कहा जाता है।" जितना भी मानव के जीवन में, मानव की वाणी में, मानव की सर्वत्र इन्द्रियों में जितनी क्रियाएँ हो रही हैं, उन क्रियाओं को अनुशासन में लाने का नाम तप कहलाता है। मन का जितना भी व्यापार है, मन का जितना भी क्रिया–कलाप है, मन की चंचलता है मन में जो नाना प्रकार के दोषारोपण विद्यमान रहते हैं उन सर्व को सर्वत्र संयम में लाने का नाम मुनिवरो! दम कहलाता है। उसके पश्चात जो इन दोनों मानो शारीरिक अनुशासन, मानसिक अनुशासन उसको ला करके जो कर्म में लाता है उसको कर्म कहा जाता है। उसको जो क्रिया में लाता है वह कर्म कहलाता है। तो इसीलिए मानव को मानो तप, दम और कर्म इन तीनों में परिणत होना होगा। आध्यातिमकवाद से इसका सम्बन्ध रहता है। मेरे प्यारे! तप से तो मानव अपने पिण्ड को जानता है और दम से प्रकृति को जानता है और मुनिवरो! जो प्रकृति में क्रिया–कलाप होते हैं उनको कर्म से क्रिया जो ब्रह्म की हो रही है उस क्रिया को कर्म में लाने का नाम मेरे प्यारे! यह आध्यात्मिकवाद प्रकरण कहलाता है। तो आज मैं इनकी विशेष तुम्हें व्याख्या प्रकट करने नहीं आया हूँ। केवल विचार–विनिमय क्या कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना कर रहे थे और परमात्मा की प्रतिभा का वर्णन करते हुए आचार्यों ने अपनी बहुत ऊँची उड़ान उड़ी है। ऊँची–ऊँची उनकी क्रियाओं में मानव संलग्न रहा है।

मुनिवरो! देखो, इससे पूर्व हम नाना देवताओं की पूजा के सम्बन्ध में अपना वाक्य प्रकट कर रहे थे। मैं तुम्हें उन्हीं महापुरुषों के क्षेत्र में ले जाना चाहता हूँ जहाँ मुनिवरो! महर्षि विश्वश्रवा उद्दालक अपनी यज्ञशाला में विद्यमान हैं। महर्षि विभाण्डक आदि ऋषि यज्ञशाला में विद्यमान अपने–अपने आसन को लिए हुए हैं उस समय महर्षि कहते हैं कि महाराज! मोक्ष के जाने के लिए मैंने

सर्वत्र याग कर्म करने का अपना संकल्प किया है।मेरा संकल्प पूर्ण होना चाहिए। उससे पूर्व मैं एक वाक्य और उच्चारण करना चाहता हूँ कि हमारे वंश में नाना ऋषि हुए हैं। परन्तु हमारे वंश में जो महर्षि उद्दालक हुए हैं, उस गोत्र में 26वे वंश में एक त्रिवण्डन नाम के ऋषि हुए हैं। 'त्रिवण्डन मुक्ता' मानो उनका नामकरण कहलाया गया है। त्रिवण्डन एक समय यह चिन्तन करने लगे कि मैंने तीन देवताओं को तो पा लिया है। परन्तु अब मैं किसी ऋषि के द्वार पर चलूँ और मैं यह जानने के लिए तत्पर हो जाऊँ, क्या मैं वायु को अपने रूपों में कैसे जान सकता हूँ? तो त्रिवण्डन ऋषि ने अपने आसन से प्रस्थान किया और वह भ्रमण करते हुए हिमालय की कन्दराओं में जा पहुँचे। हिमालय की कन्दराओं में मानो ब्रह्मर्षि, ब्रह्मवेत्ता सुकेता के पिता कोडलीवृत ऋषि महाराज विराजमान थे, वायु उनके समीप है। वहाँ यज्ञशाला है। अग्नि प्रदीप्त हो रही है और वायु वेग से गति कर रहा है। मानो अग्नि से वायु के परमाणुओं को वायु की तरंगों को, वायु की धाराओं को अपने में मानो यन्त्रों में परिणत कर रहे थें । जो वायु अग्नि में प्रवेश कर रही थी। उस वायु को वह विभाजित कर रहे थे और विभक्त करके यन्त्रों में उनकी एकत्रित कर रहे थे। मुनिवरो! देखो वेद–मन्त्र उच्चारण कर रहे हैं। वाणी पर सन्तुलन है, वाणी पवित्रता से मान गा रही है। उनकी पत्नी उनके समीप वह भी अनुसन्धान कर रही है। पति–पत्नी दोनों में अनुसन्धान की प्रवृत्ति हमारे यहाँ सृष्टि के प्रारम्भ से है। क्योंकि प्रत्येक मानव का स्वभाव है कि वह कुछ न कुछ जानना चाहता है। तो वह कोडलीवृत ऋषि महाराज, उनकी पत्नी सोमलता मानो सौम्य प्रवृत्ति से वेद–गान गा रही है और वेद–गान गाकर वह जो वायु दूरिता में ले जाती है, दूरंगतम् ले जाती है हम उस वायु को जानना चाहते हैं। क्योंकि एकांत स्थली में भी जब पति–पत्नी विद्यमान होते हैं तो वहाँ भी वे अनुसन्धान ही करते रहते हैं। क्योंकि उनका वह स्वभाव है। उनके मनों की प्रवृत्तियाँ हैं। अनुसन्धान करना एक मानव का कर्त्तव्य है।

महर्षि त्रिवण्डन थे जब उनके द्वार पर पहुँचे तो यह कहा कि महाराज! मैं वायु के स्वरूप को जानना चाहता हूँ। उन्होंने कहा, बहुत प्रिय। आओ विराजो! तो मुनिवरो! उसी यज्ञशाला में विद्यमान हो गए और ऋषि के आश्रम में उनके अनुसन्धान में जो क्रिया–कलाप हो रहा था उसको वह दृष्टिपात करते रहे। वह जो दृष्टिपात हो रहा था उसे मेरे त्रिवण्डन के उपदेशानुसार आचार्यों ने अपनी लेखनी में बद्ध किया है और यह कहा है कि 'व्रणम् व्रही व्रत देवः वायु यशश्चम् विकृतः", मानो वायु व्यापकता में रमण करने वाली है। तो मुनिवरो! वह वायु क्या–क्या करती है?

हमारे इस मानव शरीर में मानो देखो पंच प्राण कहलाते हैं। वे जो पंच प्राण हैं सबसे प्रथम प्राण का नाम 'प्राण' कहलाता है। द्वितीय का नाम अपान कहलाता है। तृतीय का नाम उदान कहलाता है। चतुर्थ का नाम समान कहलाता है और पंचम नाम व्यान कहलाता है। ये पाँचों प्राण मानव के शरीर में गति कर रहे हैं। ये पाँचों ही प्राण हैं जो इस भू–मण्डल में गति कर रहे हैं। मानो ब्रह्माण्ड में गति कर रहे हैं। और इन्हीं के द्वारा वायु का हम शोधन करते हैं। वायु को हम एकत्रित करते हैं। नाना प्रकार की वायु हैं-एक वायु तो वह है मानव शरीर में प्राण जो मुनिवरो! नाभि केन्द्र से ले करके नाना नस–नाड़ियों में, ब्रह्मरन्ध्र में होती हुई, घ्राण के द्वारा अंतरिक्ष में प्रवेश कर जाती है। द्वितीय वायु वह है जिसे हम 'अपान' कहते हैं। अपान वायु का नाभि केन्द्र से निचला स्थान है। देखो वायु का सम्बन्ध वह जलों से भी है। अग्नि से भी है नाना पदार्थो का शोधन करके जब वह प्राण मुनिवरो अपान के रूप मे परिणीत हो जाता है जितना वनस्पतियों को हम दूरिता मे परिणत करते हैं । जल को पान करके उसकी गति होती है यह सब वायु का कार्य है। वह वायु ही अपना कार्य कर रही है। मानो जैसे मल को त्यागा जाता है तो वह भी सब वायु का कार्य है। वायु ही मानो देखो इसको दूरिता में परिणत कर देती है। जब भी मानव के शरीर मे वायु का प्रकोप हो जाता है तो उसको हमें शोधन करना है । परन्तु तृतीय जो प्राण है उसको हम 'समान' कहते हैं। वह जितना भी रस बनता हे जल को दूरी ले जाने वाला भी, मन में गति करने वाला, मानो जैसे एक पौधा है, उस पौधे के आँगन में हम जल का प्रवाह जल का हम सींचन करते हैं तो वही वायु है जो जल को अपने आँगन में ले करके अपने में परिणत करती है। मानो जड़ से ले करके और वह पौधे के नाना अंगों में परिणत हो जाता है। इसी प्रकार मानव के शरीर में वही समान है नाना प्रकार की वनस्पतियों के रसों को लेकर वह सर्वत्र, नस–नाड़ियों में परिणत कर देता है। वह मानो देखो मूत्र इन्द्रिय के द्वारा जिसे हम उपस्थ कहते हैं उसके द्वारा वह बाहर को परिणत हो जाता है। उसके पश्चात चतुर्थ जो प्राण है उसको 'व्यान' कहते हैं। वह सर्वत्र शरीर का निरीक्षण करता रहता है। सर्वत्र में ओत–प्रोत होता रहता है। जब वह ओत–प्रोत होता रहता है तो सर्वत्र में कौन–सी नस–नाड़ी में कौन–से रस का प्रसार नहीं हुआ है उसको वह पहुँचाने का प्रयास करता है। परन्तु पंचम जो प्राण है उसको 'उदान' कहते हैं। उदान प्राण क्या करता है? जो भी कुछ हम आहार करते हैं उसको निचली गति करा देता है। जब मानव का अन्तिम समय आता है, आत्मा इस शरीर को तयागने लगता है तो उस समय उदान प्राण के ऊपर यह आत्मा विश्राम करता है। और विश्राम करके उसके पश्चात मानो देखो चित्त का समन्वय होता है। जब चित्त का समन्वय होता है, चित्त का संकल्प उदान के द्वारा होता है। उदान का संकल्प आत्मा के समीप होता है। यह तीनों एक सूत्र में मानो संकलन में पिरोए हुए होते हैं। चिन्तन में पिरोए हुए होते हैं। उस समय इस आत्मा को चित्त के संकलन से बन्धन से, इनको भिन्न–भिन्न प्रकार की योनियाँ प्राप्त होती रहती हैं।

मुनिवरो! देखो आज मैं यह विचार देने के लिए आया हूँ कि यह पाँच प्रकार की वायु कहलाती है। इसको हम प्राणत्व कहते हैं। हमारे आचार्यों ने नाना प्रकार की इसकी विवेचनाएँ की हैं। आज मैं विशाल विवचेना में तो तुम्हें ले जाऊँगा। केवल यह वाक्य प्रकट करने के लिए मैं आ पहुँचा हूँ कि यह जो वायु है यह जैसे शरीर में कार्य करती है इसी प्रकार उस ब्रह्माण्ड में भी कार्य हो रहा है। यह जो ब्रह्माण्ड है जो हमें दृष्टिपात आ रहा है, इसमें भिन्न–भिन्न प्रकार की वायु अपना कार्य कर रही है। इस वायु को हम वाहनों की चक्रिता (संचालन) में परिणत कर देते हैं तो वह गति करना प्रारम्भ कर देते हैं। मानो वही वायु हम यानों में उसको यन्त्रों में परिणत कर देते हैं। वह भी गति करना प्रारम्भ कर देते है। बाह्य जगत में वही वायु है जो अग्नि के परमाणुओं को ले करके मानो ऊष्णता को उत्पन्न कर देती है। वही वायु है जो शीतल जल के परमाणुओं को ले करके गति करती है तो वायु शीतल हो जाती है। तो मानो भिन्न–भिन्न रूपों में यह वायु हमें दृष्टिपात आती रहती है। यही वायु है जो देखो नाना प्रकार की अग्नि के परमाणुओं को ल करके जलाशय में प्रवेश करा देती है। और जल को आकाश मे ओत–प्रोत करा देती है । और देखो यह ब्रह्माण्ड का चित्त बन जाता है। उस चित्त में यह नाना प्रकार के पंचीकरणों का समूह विद्यमान हो करके वायु उसके गर्भ में परिणत रहती है। वायु के परमाणु हैं जो जल के परमाणुओं को लिए हुए हैं। अग्नि के परमाणुओं को लिए हुए हैं। मानो पृथ्वी के कणों को ले करके मानो उनका सबका सन्निधान कर रही है और सबको एक सूत्र में ला करके मानो कहीं पिण्ड के आकार में है, कहीं मानो सूक्ष्म के आकार में है। मानो वायु को वेग से पिण्ड छिन्न–भिन्न हो जाता है। वायु का वेग ही है जो मानो देखो पिण्ड को परमाणु बना देता है। मानो जल के परमाणुओं को अग्नि के परमणुओ को मिलान करा करके यह पिण्ड के रूप में दृष्टिपात होने लगता है।

मेरे प्यारे देखो यह जो नाना प्रकार के प्राण हैं वायु है इनको हमें जानना है। मुनिवरो देखो यह वायु हमारे सब प्राणों में गति कर रही है। देखो वायु मण्डल में, ब्रह्माण्ड में, प्राण जब गति करता है तो नाना प्रकार के जो परमाणु हैं उनमें भिन्न–भिन्न प्रकार की गतियाँ होनी प्रारम्भ हो जाती हैं। नाना परमाणु जो इस वायु की आभा से तरंगित हो रहे है उन परमाणुओ उन परमाणुओं को जान करके वैज्ञानिक नाना प्रकार के वाहनों का निर्माण करते रहते हैं। जब तक हम वायु के परमाणुओं में नहीं पहुँच पाते तब तक हम विज्ञान की ऊर्ध्व गति को पान नहीं कर पायेंगे। क्योंकि वही वायु के परमाणु हैं । विलक्षण गति होती है। इस पृथ्वी मण्डल का जो अण्डाकार बना हुआ है, उसके पूर्ण मध्य में एक रेखा होती है जिसको "वायु कृतिभा रेखा" कहते हैं। वायु प्राण–वर्द्धक है। सूर्य की जब नाना प्रकार की किरणे चलती है। वे किरणे प्राण–वर्द्धक कहलाती है और प्राणनाशक वायु भी उसी में ओत–प्रोत रहती है। जब सूर्य की अग्नि की तेजोमयी जो धारा है जो वायु 'अभ्रतः' में ले करके मध्य रेखा परमाणुओं का समूह अपने में परिणत कर लेती है और जब मानव पराकाष्ठा पर चला जाता है। वैज्ञानिक उन परमाणुओं को वायु की उस रेखा से वह परमाणु तथा प्राण–वर्द्धक

वायु अपने में शोषण कर लेता है। यन्त्र में परिणत कर लेता है। वायु को जान करके अपान को जान करके वह उसमें प्रवेश कर सकता है। प्राण को जान करके उसको अपने में एकत्रित कर सकता है। और वह जो रेखा है वह नग्न रह जाती है। वायु के परमाणुओं से जहाँ रेखा नग्न रही वहाँ अग्नि के परमाणु वायु के आँगन में प्रवेश कर जाते हैं और वायु के परमाणुओं में जहाँ अग्नि के परमाणुओं की प्रधानता हुई, उस काल में जिस राष्ट्र में वह रेखा रह जाती है मानो उस राष्ट्र का प्राणीमात्र नष्ट हो जाता है। परिणाम क्या कि इतना भयंकर, विशाल वायु और अग्नि का मिश्रण हो करके वह पृथ्वी के परमाणुओं को भी अपने में शोषण कर लेती है। परिणाम क्या होता है उस वायु का? राजा रावण के जो विधाता थे कुम्भकरण वह महर्षि भारद्वाज की विज्ञानशाला में विद्यमान हो करके, हिमालय की कन्दराओं में कहीं चले जाते थे। वहाँ वायु रेखा के ऊपर वह अनुसन्धान करते रहते थे। तो राजा रावण के विधाता कुम्भकरण जी ने यह कहा है कि कोई वैज्ञानिक इस रेखा को पूर्णतया जान ले तो वायु के तत्वों को वह जान लेता है। वह कौन है? वैज्ञानिक नहीं जान सकता। उसके पूर्ण रूपों को योगी जान सकता है। योगेश्वर जान सकता है।

अपान और प्राण का जहाँ मिलान होता है वहाँ आत्मा इस शरीर को त्यागने के लिए तत्पर हो जाती हैं। उसको हमारे यहाँ आयुर्वेदाचार्यो ने सन्निपात कहा है। उसको हम 'पितृ–पतत' भी कहते हैं। मानो हमारे यहाँ आयुर्वेद की मीमांसा करने वाले आचार्यों ने यह कहा है कि हम इस वायु के ऊपर अनुसन्धान करें जो मानो प्राण और अपान दोनों के मिलान से अग्नि की प्रधानता हो जाती है और अग्नि की जहाँ प्रधानता हुई मानो जल का उसमें पुट लग जाता है तो यह आत्मा इस शरीर से गमन कर जाती हैं। यह प्राण जो 'उदान' है यह गमन कर जाता है। क्यों कर जाता है? क्योंकि अग्नि की प्रधानता विशेष हो गई। वायु की प्रधानता समाप्त हो गई है। वायु की प्रधानता को उसने मानो देखो अपने में शोषण कर लिया है। परिणाम क्या कि हमें वायु के स्वरूप को, वायु के इन रहस्यों को जान करके प्रक्रिया में लाने का नाम वह हमारी या देव की पूजा कहलाई गई है। बेटा पूजा का तारतम्य क्या हुआ? पूजा किसे कहते हैं? पूजा का अभिप्राय यह कि इन रहस्यों को जान करके हम क्रिया में लायें। उनके ऊपर हमारा चिन्तन प्रारम्भ हो। मानो हम उसकी पूजा करने वाले हों। हे वायु देवता! ते मेघों को छिन्न–भिन्न करने वाला है। जब मेघ–मण्डल बन जाते हैं उनको कौन छिन्न–भिन्न करता है? बकासुर का कौन संग्राम कराता है? वह वायु देवता है। वह इन्द्र कहलाता है। मानो इन्द्र ही है जो वकासुर को शान्त करने वाला है। मेरे प्यारे! देखो इन्द्र क्या है? वायु है। प्राण की गति मानो देखो वायु मण्डल में जब शब्द गति करता है तो वह पवित्र बनता है। वायु मण्डल में मानो शान्तता होती है। मानव के शरीर में जो वायु की ऊँची और सामान्य गति रहती है तो मानव का स्वास्थ्य पवित्र रहता है। क्योंकि नाना वनस्पतियों के रस को ले करके वायु ही तो गति करता है। वह वायु नाना मूलाधार को ले करके जब इस ब्रह्मरन्ध्र में गति करता है। तो ब्रह्मरन्ध्र की पंखड़ियों में नाना परमाणुओं का आदान–प्रदान होने लगता है। उन परमाणुओं में इतनी दिव्य शक्ति होती है कि जितना यह ब्रह्माण्ड है वह वायु मण्डल में नाना लोक लोकान्तर गति कर रहे हैं मानो एक–दूसरे को सहायक बना रहे हैं वह योगेश्वर वायु को जान करके, वायुओं का सन्निधान करके उस 'पिपाद स्थान' को उसके परमाणुओं को जान करके वह लोक–लोकान्तर उसके लिए खिलवाड़ बन जाते है। मुनिवरो! जो नाना लोक–लोकान्तरों की जो माला है, अन्तरिक्ष में आकाश गंगाओं की जो माला है मुनिवरो! वह माला एक सूत्र में पिरो दी जाती है। और वह जो एक सूत्र है, एक आभा है वह वायु में परिणत होती हुई नाना आकाश गंगाएँ उस वायु की रेखा में वायु में अपनी आभा को रमण कर रही हैं। उस वायु को जानना चाहते हैं जो वायु मेरे प्यारे! परमाणुओं का आदान–प्रदान करती है। लोकों का आदान–प्रदान करती है। लोकों का आदान–प्रदान करके मेरे प्यारे ब्रह्माण्ड और पिण्ड की कल्पना करती है। तो बेटा! यह आध्यात्मिकवाद की शैली है ऋषि–मुनियों की। बेटा! अनुसन्धान करने वाले पवित्र शैली में ब्रह्माण्ड और पिण्ड को एक सूत्र में लाने का प्रयास करते रहें और वह सूत्र क्या है? वह वायु रूपी सूत्र है बेटा! जिस सूत्र में नाना लोक गति कर रहे हैं।

मेरे प्यारे! एक लोक है। मानो जैसे ध्रुव–मण्डल है। ध्रुव–मण्डल विशाल मण्डल है मानो करोड़ों मण्डल उसकी परिक्रमा कर रहे हैं। मुनिवरो! एक करोड़ तो सूर्य की उसकी परिक्रमा कर रहे हैं। यह गति वायु के द्वारा हो रही है। जैसे मानव के नाभि–केन्द्र से प्राण चलता है और प्राण चलकर ब्रह्मरन्ध्र को होता हुआ शब्द बनाता हुआ मानो अशुद्ध परमाणुओं को बाह्य–जगत में प्रवेश करा देता है और बाह्य–जगत की वह वायु से सुन्दर शब्द परमाणु ले करके मानो नाभि केन्द्र की आभा में परिणत करा करके नाना नस–नाड़ियों के जो परमाणु गति करते हैं रक्त में गति करते हैं, मुनिवरो! वह जो गति हो रही है वह वायु की गति है। परमाणु आते हैं और सभी परमाणु उस वायु में समाहित हो जाते हैं। पृथ्वी के परमाणु, जल के परमाणु, अग्नि के परमाणु भी उसी में ओत–प्रोत हो जाते हैं। जहाँ वायु नहीं होती, वहाँ अग्नि प्रदीप्त नहीं होती। तो इसी प्रकार अग्नि और वायु दोनों का समन्वय है। जहाँ अग्नि नहीं रहता वहाँ जल भी नहीं रहता और जहाँ जल नहीं रहता वहाँ पृथ्वी भी अपने क्रिया–कलाप को त्याग देती है। परिणाम क्या? कि एक–दूसरे के ये पूरक कहलाए जाते हैं। एक–दूसरे की आभा में रमण कर रहे हैं। रमण करने वाला आभाओं में मेरे पुत्रो! नाना प्रकार का अगन्याधान हो रहा है।

मुनिवरो! देखो, जो हमारे ब्रह्माण्ड में गति हो रही है ऐसे ही शरीरों की गति ब्रह्माण्ड में, और ब्रह्माण्ड की गति पिण्ड में हो रही है। तो हमें पिण्ड और ब्रह्माण्ड दोनों को जानना है। दोनों को एक सूत्र में लाने को हमारे यहाँ आध्यात्मिकवाद कहा जाता है। यह आध्यात्मिकवाद की शैली है ऋषि–मुनियों की। जब ऋषि–मुनि इस संसार की विवेचना करते हैं, मानो विज्ञान भी इसके सूत्र में आता है। विज्ञान भी इसी में पिरोया जाता है। जितना भी परमाणुवाद है। वह एक–दूसरे में आभायित होता रहता है।तो उस समय ऋषि विश्वश्रवा कहता है कि महाराज! कोडलीवृत जो ऋषि थे, उनके आश्रम में नाना वेदी हैं और उन वेदियों में वायु अपनी गति कर रही है और परमाणुओ को अपने वृत में प्रवेश कर रही है।। उस वायु के परमाणुओं को जो वैज्ञानिक जानता है वह मेरे पुत्रो! सूर्य–मण्डलांक्या, ध्रुव–मण्डल क्या, नाना प्रकार का यह जितना ब्रह्माण्ड है मानो उसी के अन्तर्गत आ जाता है। उसी की आभा में रमण करने लगता है। परन्तु इसको साधारण वैज्ञानिक नहीं जानता, उसको वह वैज्ञानिक जानता है जो पाँचों प्राणों के क्रिया–कलाप को जानता है। और पाँचों प्राणों को जान करके वायुयान पर गति करता है। वायु ही वायु में रमण करने वाला , ज्ञानी कहलाता है, पवित्र कहलाता है। वह योगाभ्यास में रमण करने वाला है। ब्रह्माण्ड को अच्छी प्रकार जान करके और पिण्ड का दोनों का समन्वय करने वाला वैज्ञानिक वायु के क्रिया–कलापो को सर्व प्रकार से जान सकता है। परन्तु वह जान करके उच्चारण करने में असमर्थ हो जाता है। मेरे पूजयवाद गुरुदेव इस क्रिया–कलाप को बहुत देर तक करते रहे। मैंने निश्चय के द्वारा उनमें ओत–प्रोत हो करके उस विद्या को जाना था

पुत्रो! वह मेरे पूज्यवाद गुरुदेव मानो वर्षों–वर्षों हो जाते थे अनुसन्धान में मौन हो करके वायु पर अनुसन्धान करते थे और वायु को जानते रहते थे। एक सूर्य स्वर कहलाता है। एक चन्द्र स्वर कहलाता है। सूर्य तेजोमय कहलाता है और चन्द्र शीतलमय कहलाता है। एक रात्रि और एक दिवस में कितने प्राणों की गतियों में यह परमाणु अदलते–बदलते रहते हैं। इस पर बारह वर्ष एक अनुसन्धान किया था और बारह वर्ष के पश्चात एक द्वन्द्व स्वर को हम जान पाये। उनका द्वन्द्व स्वर जो है वह कहाँ–कहाँ कैसे गति करता है! मानो बारह वर्ष का तप इस सूर्य प्राणायाम जो तेजोमय है जो वायु में तेज गति कर रहा है। सूर्य जो एक रात्रि और एक दिवस में कितने स्वरों में गति करता है? जानने के लिए ,मुनिवरो! बारह–बारह वर्षों का अनुष्ठान मानो बारह वर्षो का तप किया जाता है। ऋषि–मुनि बेटा! वैसे ही नहीं बनते। ऋषि उस काल में बनता है जब चन्द्र स्वर, सूर्य स्वर को जान लेता है। एक का देवता चन्द्र है तो एक का देवता अग्नि कहलाया गया है। बेटा! मैं विशाल चर्चा में तुम्हें ले जाना नहीं चाहता हूँ। जिन वाक्यों का प्रयोजन नहीं होता उन वाक्यों को हम उच्चारण किया भी नहीं करते। परन्तु यह तो साधना है ऋषि–मुनियों की। विचार–विनिमय करने

का विषय है। आज का विचार केवल क्या? मुनिवरो! देखो वायु में, वायु की गतियों को जानना यह मानव के जीवन की आभा कहलाती है। इस ब्रह्माण्ड को जानने के लिए कितने–कितने ऋषियों ने तप किए हैं और इस तपश्चर को जानने के लिए मेरे पुत्रो! देखो कितना योगाभ्यास किया जाता है? आजका विचार–विनिमय कया? कि हम ज्ञान और विज्ञान में रमण करना चाहते हैं। हम वायु को ही दृष्टिपात करना चाहते हैं।कि वायु कितने प्रकार की है? 84 प्रकार की वायु तो देखो यहाँ आयुर्वेदाचार्यों ने स्वीकार की है। परन्तु उनमें बेटा! नाना प्रकार के भेदन कहलाए जाते हैं। इसी प्रकार अरबों, खरबों प्रकार की तरंगें वायु की होती हैं। इनकी गणना करने में असमर्थ रहता है प्राणी। गणना नहीं कर पाता। जब तक वह गणना करता रहता है तब तक करता रहता है जब गणित समाप्त हो जाता है तो उसको अनुभव करता रहता है। अनुभव का विषय क्रिया–कलाप में नहीं आ पाता। मुनिवरो! वह तो आत्मा के क्रिया–कलाप में नहीं आ पाता। मुनिवरो! वह तो आत्मा के क्रिया–कलाप में ही प्रवेश कर जाता है। आजका विचार क्या? मैं तुम्हें बहुत गम्भीर विषय पर ले गया पुत्रो! परन्तु जैसी उड़ान आज मैंने उड़ी है वह बहुत विचित्र है पुत्रो! उस विचित्रता को धारण करना हमारा कर्तव्य है।नाना प्रकार के परमाणुओं को, पंच जो प्राण हैं इन्हीं परमाणुओं का आदान–प्रदान वायु मण्डल में हो रहा है। वायुमण्डल नाना लोक–लोकान्तरों को स्थिर किए हुए हैं। उसी की क्रिया हो रही है। वही क्रिया है जो वाहनों के यन्त्रों में भ्रमण कर देते हैं तो वाहन गति करने लगते हैं। चक्रिता में परिणत हो जाता है तो वहाँ गति करने लगते हैं। मेरे पुत्रो! देखो यह जो वायु है, वह यह वायु ही पृथ्वी के परमाणुओं को ले जाती है। जल के परमाणुओं को ले जाती है और यही आदान–प्रदान करती है। नाना लोक–लोकान्तर एक–दूसरे में आभायित हो रहे हैं। यह जो पृथ्वी–मण्डल है और भी पृथ्वी हैं मानो 30 लाख पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा कर रही हैं और एक सहस्त्र सूर्य है जो बृहस्पति की परिक्रमा कर रहे हैं और एक सहस्त्र बृहस्पति हैं जो आरूणी मण्डल की परिक्रमा कर रहे हैं। एक सहस्त्र आरुणी मण्डल हैं जो ध्रुव–मण्डल की परिक्रमा कर रहे हैं। मानो एक सहस्त्र ध्रुव हैं जो जेठाय नक्षत्रों की परिक्रमा कर रहे हैं। एक सहस्त्र जेठाय नक्षत्र हैं जो पुष्य नक्षत्रों की परिक्रमा कर रहे हैं। एक सहस्त्रस स्वाति नक्षत्र हैं जो रोहिणी मण्डल की परिक्रमा कर रहे हैं। एक सहस्त्र रोहिणी मण्डल हैं जो प्रीति मण्डलों की परिक्रमा कर रहे है। बेटा! अनन्त ब्रह्माण्ड है। यह वायु मुनिवरो! अनन्तता में रमण करती रहती है। इसी प्रकार मुनिवरो! प्रत्येक प्राणी, प्राणी की परिक्रमा कर रहा है। मुनिवरो! देखो माता का पुत्र परिक्रमा कर रहा है। मेरे प्यारे! देखो पिता पुत्र की परिक्रमा और पुत्र पिता की परिक्रमा कर रहा है। तो यह सब मुनिवरो! वायु का आदान–प्रदान चल रहा है।

आओ मेरे प्यारे! मैं इस वायु देवता की पूजा कर रहा था। पूजा के सम्बन्ध में हम अपना विचार दे रहे थे कि वायु देवता इतना महान है। इसके ऊपर मानव अनुसन्धान करता रहता है। आज हम मुनिवरो! वायु के सम्बन्ध में अपना विचार दे रहे थे। ऊँची से ऊँची उड़ान उड़ रहे थे। आज मैंने प्राण और अपान की व्याख्या की है। आगे जो तीन प्राण रहे हैं इनकी व्याख्या हम कल कर सकेंगे। आजका विचार अब हमारा समाप्त होने जा रहा है। कल समय मिलेगा तो शेष चर्चाएँ प्रकट करेंगे। आजका विचार समाप्त। अब वेदों का पाठ होगा। और इसके पश्चात वह वार्ता समाप्त हो जाएगी। निर्मल वेदान्त सम्मेलन माल रोड अमृतसर

५. आयु ओर अन्तरिक्ष 20–04–1977

जीते रहो!

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भाँति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होग, आज हमने पूर्व से जिन वेद मन्त्रों का पठन–पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परागतों से ही उस मनोहर वेद–प्राणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेद–वाणी में उस ममतामयी माँ की महत्ता का वर्णन किया जाता है। माँ तो ममत्व को धारण करने वाली है। इस संसार को जो गर्भस्थल में धारण किए हुए है। वह जो मेरी ममतामयी माँ है जो हमारे दुर्गुणों को समाप्त करने वाली है। उसको 'दुर्गेवेति' कहा गया वह दुर्गा बन करके हमारे दुर्गुणों को शान्त कर देती है। श्रद्धामयी देवी उत्पन्न हो जाती है। वह जो श्रद्धामयी देवी है वही मानव के जीवन की विभोर कर देती है। अथवा वही मानव की पवित्र बना देती है। हे माँ! तू कैसी मेरी भोली माँ है? तू मेरे दुर्गुणों को शान्त करने वाली है। दार्शनिक ऋषियों ने इस ममतामयी के सम्बन्ध में नाना प्रकार का अपना विचार, अपना मन्तव्य दिया है और यह कहा है कि यह तत्वों में रमण करने वाली है।प्रथम जब गति आती है तो इस ममतामयी में गति आती है। मेरे प्यारे! उसको हम 'दुर्गेवेत्ति' कहते हैं। वह हमारे दुर्गुणों को शानत करने वाली है। उसी का दूसरा रूप काल रात्रि कहा गया है। मानो जब अन्धकार छा जाता है तो यह तेजोमयी काल को अपने में धारण करने वाली है। इसे हम काल रात्रि कहते हैं। हे काली माँ! तू वास्तव में हमारे हृदय में जो नाना प्रकार से द्वेषारोपण होते रहते हैं, ईर्ष्या की अशुद्ध अग्नि जागरूक रहती है। हे माँ! तू काली माँ बन करके हमारे हृदयों को स्वच्छ बना देती है। तुझे वेद ने काल रात्रि कहा है और काल रात्रि क्यों कहा है? क्योंकि तू काल की भी काल कहलाती है। काली माँ बन करके मानव के ह्रदयों को स्वच्छ बना देती है। हे ममत्व को धारण करने वाली अनुपम देवी तू वास्तव में हमारे जीवन को उद्‌बुध कर। तू अग्नि बन करके हमारे जीवन को उद्‌बुध कर देती है । उदबुद्ध स्वाहाः अग्ने , मानो प्रकाश मे ले देती है उद्‌बुद्ध का अभिप्राय यह है कि प्रकाश को अर्जित किया जाता है। वह जो ज्ञान रूपी अग्नि है, वह जो ज्ञान रूपी आभा है तो उसे उद्‌बुद्ध कर देती है। तू पवित्र देवी है। हमारे आँगन में तेरी मममतामयी जो आभा है वह हमारे अन्तःकरण को पवित्र बनाने वाली है।

मेरे प्यारे! मैं आज माता के सम्बन्ध में आज इस विचार में ले जाना नहीं चाहता हूँ। उसको वैदिक साहित्य में बेटा! सावित्री कहा है। उसी को गायत्री कहा है। उसी को सेलखण्डा कहा है। किसी भी काल में मानो वह खण्डित नहीं होती। सदैव अखण्ड रहती है। मुनिवरो! उसी को मानो चक्राणि रूपों में वर्णित किया है। और भी नाना रूपों में बेटा! अष्टभुजों वाली माता वही कहलाती है। वह अष्टभुजों वाली कैसी माँ है? देखो जो अष्टभुजाओं से मानव का कल्याण करती है मुनिवरो ! आठ योग के अंग होते हैं। उन आठों योग के अंगों को जानने वाला उस अष्ट भुजाओं वाली माँ को जानता है। वह ममतामयी है। वह आनन्दमयी है। मुनिवरो! उसको जानने के पश्चात योग के आठ अंगों को जान करके वह माता जो संसार को धारण करने वाली अष्ट भुजाओं वाली है वह योगिनी है। वह योग में मानव को परिणत करा देती है और वह परमातमा मेरे प्यारे! कौन 'ममप्रवे व्रत देवः'। अष्ट भुजाओं को जानने वाला बेटा! योगेश्वर ब्रह्म हो प्राप्त हो जाता है। आज मैं तुम्हें उस क्षेत्र में ले जाना चाहता हूँ जिस क्षेत्र में ऋषिजन अपने आसन पर विद्यमान हो करके ऊँची उड़ान उड़ते रहते हैं। ऊँची मीमांसा करते रहते हैं एक–एक शब्द की। आज हम ममतामयी माँ की याचना कर रहे थे। क्योंकि वेद का शब्द आ रहा था, वेद हमें पुकार–पुकार कर यह कहता है, **"हे मानव! तुम अपने मानसिक जीवन को संयमी बनाते चले जाओ। मनोव्रतम अपने शरीर को मानो नियन्त्रण में लेते चले जाओ। नियन्त्रण तुम्हें महान बना देगा, वही तुम्हें ओजस्वी और तेजस्वी बनाता है।"**

मेरे प्यारे! देखो आज हम उच्चारण करने जा रहे हैं? आज मैं प्रारम्भ के शब्दों में वह जो ममतामयी है जिसकी कोई सीमा नहीं है, जिसको ऋषिजन गायन रूप में गाते रहते हैं। गायत्री जो गायी जाती हो और गाता कौन है बेटा! जो विभोर हो जाता है। गाता कौन है? जिसे किसी प्रकार की विडम्बना नहीं रहती। भयभीत नहीं रहता। वही इस संसार में वही गायत्री को गाता है। वह कैसे गाता है? मेरे प्यारे! देखो मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जब ऋषिजन भयंकर वन में उसको गाते । ज्ञान का मानो भयंकर वन है और उस ज्ञान रूपी वन में मानव जब चल जाता है तो गान गाता है और जब वह गान गाता है। 'त्राहिमाम गायत्री' जो गायी जाती हो, गान गाता है तो उनके चरणों में मृगराज, सिहराज यह सब प्राणी उनके चरणों में ओत–प्रोत हो जाते हैं। हिंसक

प्राणी अपनी हिंसा को त्याग देता है मानो वह अहिंसा में परिणत हो करके मेरे प्यारे! वह गायत्री के गान को पान करते हैं, पान करने वाले कितने महान वे ऋषि होते हैं? जो गायत्री गाते हैं, गान गाते हैं वह ममतामयी की, देवी की उपासना कर रहे हैं।

आओ मेरे प्यारे! आज ऋषि अपने आसन पर विद्यमान हो करके प्राणो की मीमांसा कर रहा है। मेरे प्यारे! देखो प्राण और अपान दोनों ही रुग्णों के कारण हैं। दोनों ही स्वास्थ्य के मूलक कहलाए जाते हैं। तृतीय प्राण का नाम हम समान भी कहते हैं। वनस्पतियों का जो मानव, नाना प्रकार के अन्नाद को पान करता है जो वायुमण्डल से परमाणु लेता है प्राण और अपान दोनों की तरंगें उनका रस बना देती हैं और समान को परिणत कर देती हैं। समान ले करके नाना प्रकार की नस–नाड़ियों में परिणत करा देता है। नाना नस–नाड़ियों में वह प्रवेश हो जाता है। उसके पश्चात व्यान इस शरीर में गति करता है। तो मुनिवरो! प्रत्येक नस–नाड़ी का निरीक्षण करता है। उदान प्राण को तो प्रत्येक मानव जानता है। **वह उदान जो प्राण है वही मुनिवरो! इस कंठ में रमण करता है।** वह कण्ठों में रहने वाला है। मेरे प्यारे! उदान और व्यान दोनों के मिलान कर ने से व्यष्टि चित्त को रमण करता है। व्यष्टि चित्त में प्रवेश करता है। तो मुनिवरो! वह व्यष्टि जो चित्त है वही मानव की आभा को ऊर्ध्वगति में ले जाता है, मानव को महान और देवता बना देता है।

देखो यह पांचो प्राण इस बाह्य जगत में कार्य का रहें है , सामान्य वायु है जो सर्वत्र ओत–प्रोत हो रही है। वही वायु पृथ्वी के गर्भ से लेकर के नाना लोक–लोकान्तरों के गर्भ में वह प्रवेश कर रही है। नाना लोक–लोकान्तरों में उसको हम व्यान के रूप में प्रकट करते रहते हैं। वह व्यान नामक वायु कहलाती है जो मुनिवरो! देखो इस संसार के, प्रकृति के कण–कण को गति देने वाली है। मानो लोक–लोकान्तरों को चक्रित बना रही है। वायु है द्वितीय रूपों में इसको समान कहा जाता है। वह जो समान वायु है वह इस संसार का निरीक्षण करता रहती है। उसी में परमाणुओं का आदान–प्रदान होता है। जहाँ वायु व्यान नहीं पहुँच पाता, जहाँ वायु समान नहीं पहुँच पाता मेरे प्यारे! देखो यह जो लोक–लोकान्तर हैं, वह नित्य क्रिया बन करके मानो एक–दूसरे से मिलान कर सकते हैं। एक–दूसरे से इनका आपस में संघर्ष हो सकता है। परन्तु ये संघर्ष से दूरी करने वाले हैं।

ब्रह्माण्ड की आयु

मेरे प्यारे! हम त्रिवन्दन ऋषि कोडलीव्रत ऋषि महाराज के आश्रम में प्रवेश कर रहे थे तो मेरे प्यारे! देखो वहाँ अनुसन्धान हो रहा था। नाना प्रकार की अनुसन्धान शाला में विद्यमान होकर के नाना ऋषि देवत्व को प्राप्त कर रहे थे। वह वायु को जानने के लिए तत्पर हो रहे थे कि यह जो वायु है यह कैसा अनुपम देतस है? यह कैसी देवी है? जो वायु बनकर के इस संसार को उज्ज्वल बना रही है। आयु के ऊपर ही है। आयु के ऊपर ही मानव का जीवन रहता है। आयु यदि मानव के जीवन में नहीं होगी मानव की आयु का परिमाण नहीं हो सकता।मुनिवरो! देखो वायु गति करता है हम अपने श्वासों की गति को जानते रहते हैं। हम परमाणुओं को जानते रहते हैं। श्वास पर श्वास आते हैं। तो वह वायु का माध्यम है। ऋषियों ने यह सिद्धान्त माना है कि भोग के ऊपर मानव की आयु होती है। किन्हीं ऋषियों का यह विश्वास है कि आयु मानव के श्वासों के ऊपर रहती है। **जितना भी विशेष श्वास गति करता है उतनी मानव की आयु सूक्ष्म होती रहती है।** इसी प्रकार मानव की सीमा में बद्ध रहने वाली आयु है। इसी प्रकार जो सामान्य वायु वाह्य जगत में है उसी के आधार पर लोक–लोकान्तरों की आयु का निर्माण होता है। आदि ब्रह्मा ने जब सृष्टि का प्रारम्भ किया तो मुनिवरो! इस संसार को, ब्रह्माण्ड को चार अरब, बत्तीस करोड़ वर्ष की आयु प्रदान कर दी । और यह ब्रह्मा का दिवस कहलाता है। यह ब्रह्मा का दिवस है क्योंकि ब्रह्म इस दिवस में खिलवाड़ करता रहता है। अथवा इस संसार को याग रूप में परिणत करता रहता है। वह जो ब्रह्मा का याग हो रहा है ब्रह्मा दिवस रूप मे याग कर रहा है मेरे प्यारे! देखो यह आयु क्या है? मुनिवरो! इन तत्वों में रमण करने वाली जो आयु है वह आयु उतने ही समय तक है जितना उसका संकल्प रहता है। क्योंकि मानव जब संकल्प करता है तो वह भी वायु के माध्यम से करता है। मुनिवरो! वही संकल्प मानव के, बालक के शरीर में आयु रूप बनकर के रहता है। तभी माता कहती है मेरे पुत्र की आयु माना तीस वर्ष हो गयी है। मेरे पुत्र की आयु मानो पचास वर्ष हो गयी है। वह इसलिए कहती है क्योंकि वायु ही उसका संकल्प है। वह संकल्पमात्र से उसे पुत्र कह रही है, मेरे प्यारे! संकल्प से होने वाले नाना प्रकार के परमाणुओं का वह सन्निधान कर देती है। वह उसको सुगंठित कर देती है। और वही आयु बनकर वायु का दूसरा स्वरूप कहलाता है। वह जो आयु है वही मानव को बेटा! संकल्प में कटिबद्ध कर देती है। परिणाम क्या? मेरे प्यारे! यह दर्शनों की उड़ान है।

वैदिक ऋषि कहते हैं, आचार्य कहते हैं कि ब्रह्मा की चार अरब, बत्तीस करोड़ की जो आयु है वह ब्रह्मा का दिवस कहलाता है। परन्तु जब प्रलयकाल आता है, तो वायु अपने परमाणुओं को इनमें से सब में से समेट लेती है। वह संकल्प ही है जो स्वतः समिट जाते हैं जब उनका संकल्प होता है। अग्नि के तेजोमयी, जल की शीतलमयी, पृथ्वी के कणोमयी वह सर्वत्र वायु की आभा में प्राप्त हो जाते हैं। जब वायु की आभा में वह प्राप्त हो जाते हैं तो मुनिवरो! अन्धकार आ जाता है। यह सब "अन्तरिक्ष व्रते ब्रह्म कृतः।" मानो देखो किन्हीं आचार्यों ने अन्तरिक्ष के परमाणु माने हैं। किन्हीं आचार्यों ने यह कहा है कि आकाश में ही चारों तत्वों के परमाणु भ्रमण करते रहते हैं। मानो वही उसमें निहित रहते हैं। परन्तु हमारे यहाँ यह कहा गया है, आचार्यों ने यह कहा है मन्थन करने वालों ने कि जब प्रलय काल होता है प्रलय काल में यह परमाणु अपने में स्वतः सिमट जाते हैं और रात्रि आ जाती है। उसे ब्रह्म रात्रि कहते हैं। वह जो ब्रह्म रात्रि है उस ब्रह्म रात्रि में ब्रह्मा अपनी शैया पर शान्ति से रहता है। वह तो एक स्थली पर दिवस में भी टिका हुआ रहता है। परन्तु रात्रि में भी उसी प्रकार रहता है। जब वह रात्रि समाप्त हो जाती है तो मुनिवरो! देखो इस वायु के परमाणु अन्तरिक्ष में प्रवेश करते हैं। अन्तरिक्ष में आते ही मुनिवरी! देखो उसमें वे गति करते हैं। जब वह गति करते हैं जो अपने में प्रवेश कर गये थे उन वायु परमाणुओं का विच्छेद होता है। जब महतत्व की दुकदुकी (क्रिया) इसमें लगती है तो परमाणु विकृत हो जाता है। वह भिन्न–भिन्न अपने स्वरूप को धारण कर लेता हे जिसमें वह दिवस में रहता है। परन्तु देखो वही परमाणु, मुनिवरो! वायु के परमाणुओं में गति करता हुआ उससे वह परमाणु भिन्न होकर के अग्नि के परमाणु गतिमान हो करके वह जल के परमाणु, मुनिवरो! देखो वायु के परमाणुओं में गति करता हुआ उससे वह परमाणु वृत रूपों में संगहीत हो जाते हैं और वे ही संग्रहीत रूपों में पृथ्वी के परमाणु अपनी आभा को प्राप्त करने लगते हैं। यह हमारे यहाँ देखो सर्वत्र पंजीकरण कहलाया गया है।

आज कोई मानव यह कहे कि जल का अपना स्वरूप नहीं होता क्योंकि ऋषि और व्याकरण कहता है कि जल–संघाते धातु है। जल तो संघात से उत्पन्न होता है। संघात कहते हैं जो मिले हुए दो पदार्थों का एक रूप है और दोनों रूप अर्थात् अपने रूप को समाप्त कर देते हैं। जैसे माता–पिता का जब मिलान होता है तो वह अपने–अपने स्वरूप को समाप्त कर देते हैं मानो उससे तृतीय उत्पन्न होने वाला पुत्र हो जाता है। इसी प्रकार देखो दो आयु हैं, दो आभा हैं, दो तरंगें हैं। वे तरंगें प्राणनाशक हैं, प्राणवर्द्धक हैं। इन दोनों तरंगों ने अपने–अपने स्वरूप को समाप्त कर दिया। संघात से जल उत्पन्न हो गया। वास्तव में जल संघात है। जब वृत्ति है। परन्तु इसको, हम तत्व स्वीकार नहीं करते। मेरे प्यारे! इसको हम मिश्रित–तत्व कहते हैं। आज मैं इन विचारों में जाना नहीं चाहता हूँ। विचार क्या! मेरे प्यारे! देखो यह जो मानो आयु है यह वायु और आयु दो शब्द बनते हैं। आयु कहते हैं संकल्प को, जितना भी जिसका संकल्प होता है। वाुय कहते हैं जो इस संकल्प में निहित हो रही है। मानो जो संकल्प को गति दे रही है। संकल्पमात्र से यह मानव कस जीवन संकलित हो रहा है। उसी के आधार पर क्योंकि इस शरीर में जो रहने वाली आत्मा है वह चैतन्य है। वह देखो न किसी का पुत्र है, न पुत्री है, न वह पति है, न पत्नी है। वह एक रस रहने वाली चेतना है। उस एक रस रहने वाली चेतना की दो ही गति होती हैं। एक ऊर्ध्वा में एक ध्रुवा में। एक

ममता में, एक मानो 'अ' में रहती है। वह जो 'अ' है वह ईश्वर का पर्याचवाची शब्द है। चेतना का वाची शब्द है। उसके गुणों में मेरे प्यारे! चेतना आती चली जाती है और वह उसकी आभा में आभायित हो जाती है। उससे निचली गत में जाते हैं तो 'म्' में सर्वत्र ब्रह्माण्ड रहता है। 'म्' में पाँच 'ममभ्रही' हैं। 'म्' में ही मानो देखो जितना भी 'मैं' वाद यह सब मायावाद है, प्रपंचवाद है। इस पपवंचवाद में आत्मा जाता है तो नाना प्रकार के दोषारोपण होने लगते हैं। यदि ऊर्ध्व गति को जाता है तो परमात्मा के दिवस में प्रवेश कर जाता है, दिव्यता को प्राप्त करता है। आज हम सामान्य प्राण को, सामान्य आयु को जानना चाहते हैं। देखो यह गति करने वाली है। मानो इसी की गति से यह अभ्रः हो रहा है। लोक–लोकान्तर इस प्राण के आधार पर इन लोकों की एक माला बनी हुई है। आकाश–गंगाओं की माला बनी हुई होती है। क्योंकि देखो नाना आकाश–गंगाएँ हैं। इन आकाश–गंगाओं को कोई सीमाबद्ध नहीं कर सकता। मेरे प्यारे! इन आकाश–गंगाओं में जितना लोक–लोकान्तर है इसको कोई मानव सीमाबद्ध नहीं कर सका। आचार्यों ने तो एक आकाश–गंगा में नील और खरब की वाताएँ प्रकट की हैं। वहाँ भी कई नील और कई खरबों में मानो एक ही आकाश–गंगा में मण्डल माने जाते हैं। मानो एक–दूसरे का मण्डल एक पूरक कहलाया जाता है। वह प्राण की आँगन की आभा में बेटा! गति कर रहे हें। सामान्यता में वह रमण करने वाला है। परन्तु देखो वह एक वायुमण्डल कहलाता है। मेरे पुत्रो! यह जो वायुमण्डल है इसमें नाना आकाश–गंगाएँ हैं। अन्तरिक्ष कहते हैं आकाश को, वहाँ रमण करने, भ्रमण करने के लिए उसे अवकाश प्राप्त होता है।

हमारे इस मानव शरीर में मुनिवरो! हम नाना प्रकार के पदार्थों को पान करते हैं। और वह जब कण्ठ के देश पर पदार्थ जाता है, औषधियों का रस जाता है उसको उदान मानो निचली गति दे देता है। गति देकर वह समान में प्रवेश कर जाता हे, समान उसको परिपक्व बनाता है, उसका 'पिपाद' बना देता है, 'पिपाद' बना करके सामान्य को परिणत कर देता है। सामान्य उसे नाना रूपों में ला देता है। इसी प्रकार वायु के मानो देखो जो वायु उदान में रमण करने वाला है यह नाना प्रकार के परमाणुओं को ले करके वायु को तरंगों में तरंगित होते हैं। वह तरंगित हो करके उसके पश्चात वह लोक–लोकान्तरों में प्रवेश करते हैं। मुनिवरो! देखो, जो भौतिक विज्ञान में प्रगति करने वाले हैं वह वैज्ञानिक उन परमाणुओं को अपने में एकत्रित करते हैं। वह नाना प्रकार के वाहनों का निर्माण करके मानो कोई मंगल में जा रहा है। कोई बुद्ध में जा रहा है। कोई यान चन्द्रमा में जा रहा है। नाना प्रकार के वाहनों का निर्माण कर लेता है। मेरे पुत्रो! मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें कहा था। आधुनिक काल का वैज्ञानिक भू–मण्डल का जो वैज्ञानिक है वह अनुसन्धान कर रहा है और वह यह अनुसन्धान कर रहा है कि अग्नि में जो वायु मिश्रित हो रही है अथवा वायु जो अन्तरिक्षमयी है आज हम उस वायु के ऊपर गति करना चाहते हैं। मानो उसके ऊपर आधिपत्य करना चाहते हैं। **मंगल के जो वैज्ञानिक** हैं वह नाना रूपों में अनुसन्धान कर रहे हैं और वह अनुसन्धान करते वायु की कुछ तरंगों को वह जान गए हैं। वायु की तरंगों में जो मानो देखो प्रबलता है वह अपने में अनुभव करके यानों का, यन्त्रों का निर्माण कर रहे हैं। वह नाना लोकों के चित्रों को लेने के लिए तत्पर हो गए हैं। परन्तु आज मैं तुम्हें पुत्रो! विज्ञान के युग में नहीं ले जाना चाहता हूँ। न मैं नाना लोक–लोकान्तरों की चर्चा करने आया हूँ। विचार यह देने के लिए आया हूँ कि मानो देखो तीनों जो प्राण हैं यह अपनी–अपनी आभा में रमण करते हैं और रमण करके वही लोकों को यांत्रिक बना रहा है, कोई गति दे रहा है, भक्षण कर रहा है। एक माला के रूप में यह ब्रह्माण्ड मानो देखो वायुमण्डल में, वायु की आभाओं में यह रमण कर रहा है।

अन्तरिक्ष

आज मुनिवरो! देखो मैं तुम्हें यह वाक्य प्रकट कराने आया हूँ, यह माना बनी हुई है। यह ब्रह्माण्ड की माला है। इस माला को जो योगीजन, ऋषिजन, प्राणों को जानने वाला जो धारण कर लेता है वह परम योगेश्वर बन जाता है। वह परमानन्द के आँगन को प्राप्त करने वाला बन जाता है। वह जो अन्तरक्षि है जिसे हम अवकाश कहते हैं। देखो अवकाश इसलिए कहते हैं, हमारे में यदि अवकाश नहीं होगा तो हम भ्रमण नहीं कर सकेंगे। क्योंकि उन परमाणुओं में जो गति कर रहे हैं उनमें अवकाश है। देखो पृथ्वी में भी अवकाश रहता है। उसे अन्तरिक्ष कहते हैं। अवकाश मण्डल कहते हैं। जैसे एक मानव एक समिधा को पृथ्वी में अवृत करना चाहता है। वह दुकदुकी लगाता है तो मानो देखो उतना स्थान पृथ्वी प्रदान कर देती है। इससे सिद्ध हुआ कि पृथ्वी में अन्तरिक्ष है। पृथ्वी में अवकाश है, मुनिवरो! देखो उसमें अवकाश है।, वह गति कर रही है। अण्डाकार बन करके गति कर रही है। पृथ्वी के गर्भ में नाना प्रकार की धातुओं का निर्माण होता है। सूर्य की तेजोमयी किरणों उसमें प्रवेश करती हैं। मानो प्रवेश तो वहीं करेंगी जहाँ अवकाश होगा। जहाँ अन्तरिक्ष होगा। तो वह अन्तरिक्ष में गति कर रही है। मानो देखो जो पृथ्वी के गर्भस्थल में अग्नि प्रचण्ड हो रही है। अग्नि की ज्वाला में जल का पिपाद बनाया जा रहा है। नाना परमाणुओं का पिपाद बनाया जा रहा है। तो इससे यह सिद्ध हुआ कि पृथ्वी में अवकाश है। पृथ्वी के गर्भ में अन्तरिक्ष विद्यमान है। जैसे मानव के शरीर में नाना प्रकार का पदार्थ जाता है। जब वह नस–नाड़ियों के द्वारा, अन्तकृतियों के द्वारा जाता है, कृतियों में जब प्रवेश करता है तो वहाँ अवकाश दृष्टिपात होता है। नस–नाड़ियों के मध्य में भी एक अवकाश है। मुनिवरो! देखो जब मानव की अस्थियों का निर्माण होता है तो वहाँ अस्थियों के आँगन में भिन्न–भिन्न प्रकार के छिद्र होते हैं और वे जो छिद्र हैं वे एक आकाश का प्रतीक है। उसमें अवकाश है। उसमें अन्तरक्षि विद्यमान है।यह जो वायु है अन्तरक्षि में ही भ्रमण कर रही है। अग्नि अपनी नाना प्रकार की ज्वालाओं को लेकर के, प्रचण्डता को ले करके मानव को तेजोमयी बना करके अन्तरिक्ष में गति कर रहा है। मेरे पुत्रो! सर्वत्र अन्तरिक्ष कहलाता है।

एक मानव शब्दों को उच्चारण कर रहा है। शब्दों में परमाणु हैं। शब्दों में उस मानव का चित्र है। वह जो चित्र अन्तरिक्ष में गति कर रहा है वह उसका गुण है। क्योंकि उसी में ओत–प्रोत रहने वाला है। मेरे प्यारे! मानव के मुखारबिन्द से शब्द का निर्माण होता है तो शब्द का निर्माण मुनिवरो! देखो रसना और तालु इन दोनों का समन्वय होता है। जब दोनों की सन्धि हो जाती है तो उस समय शब्द उत्पन्न होता है जिसको "अ" कहा जाता है। बालक किसी भी काल का रहने वाला हो, किसी भी लोक का रहने वाला हो परन्तु जब माता के गर्भ से पृथक् होता है तो सबसे प्रथम "अ" कहता है। तो "अ" का जो शब्द है वह परमात्मा का वाची शब्द माना गया है। उसके कोई मात्रा नहीं होती, कोई हलन्त नहीं होता। वही शब्द ईश्वरीयकृत अविकल शब्द कहलाता है। उसकी जो ध्वनि है वह अन्तरिक्ष को जाती है। अन्तरिक्ष में, आकाश में वह प्रवेश कर जाती है। वह जो 'अ' शब्द के साथ में जो चित्र जाता है वह मेरे प्यारे! देखो देवताओं के लोक में प्रवेश कर जाता है। उस अन्तरिक्ष में भिन्न–भिन्न प्रकार की आत्माएँ, भिन्न–भिन्न प्रकार के चित्र, भिन्न–भिन्न प्रकार की आभा निहित रहती है। मानो उसी में नाना प्रकार की आभा ओत–प्रोत हो जाती है और उसी में वह गतिशील रहती है। जैसे नाना प्रकार के लोक–लोकानतर वायु मण्डल वायु की आभा में गति करते हैं यदि लोंकों को अवकाश प्राप्त नहीं होगा, भ्रमण करने का स्थान नहीं होगा तो वायु क्या कर सकता है? तो इसीलिए मुनिवरो! देखो अन्तरक्षि को कहते हैं अवकाश। और अन्तरिक्ष में यह सर्वत्र ब्रह्माण्ड आकाश में ओत–प्रोत हो रहा है। नाना पृथ्वी अपने आँगन में गति करती हैं तो वह अवकाश में प्राप्त हो रही है। तो इसीलिए प्रत्येक मानव शरीर में अवकाश को जानना चाहता है। मेरे प्यारे! जितना भी हम अन्न पान करते हैं उस अन्न को भ्रमण करने का स्थान भी नहीं प्राप्त होगा तो उस का रस नहीं बनेगा। क्योंकि रस वहीं बनता है जहाँ आकाश होता है। जहाँ अन्तरिक्ष होता है। इसीलिए अन्तरक्षि की उपासना करना एक हमारे लिए विशेषता मानी जाती है। हमें उसका पूजन करना है। उस देवता की हमें पूजा करनी है। अवकाश हमारा सुन्दर हो। आकाश हमारा सुन्दर होना चाहिए।

देव पूजा

मुनिवरो! देखो एक गृह में माता–पिता विद्यमान हैं और वह माता–पिता स्वच्छ रहते हैं। मानो दर्शनों का अध्ययन करते हैं। उनके गृह में पति–पत्नी एक–दूसरे की सम्मति से रहते हैं बाल्य उनके मानो महान रहते हैं। उनके जो स्वच्छ परमाणु हैं वह अन्तरिक्ष उनके आकाश अर्थात् स्वच्छ गृह में प्रवेश रहते हैं। और जब वह प्रवेश रहते हैं तो उन परमाणुओं से ही उनके गृह का वातावरण बन गया है। वह अन्तरिक्ष है। उनके गृह में जहाँ शब्दों को भ्रमण करने के लिए मानो अवकाश प्राप्त होता है वही तो स्वर्ग कहलाता है। जहाँ मुनिवरो! नार्किक है वहाँ भी अवकाश रहता है। मेरे प्यारे! माता–पिता कलह युक्त रहते हैं। कलह में उनका जीवन रहता है, बाल्य भी कलह में रहते है। मानो देखो राष्ट्र कहीं कलह में चला गया। मेरे प्यारे! स्वार्थवाद में प्रवेश कर गया तो परिणाम उसका यह होगा कि जो आकाश है जो अन्तरिक्ष है यह उन अशुद्ध तरंगों से, अशुद्ध शब्दों से, अशुद्ध ध्वनि से मेरे प्यारे! देखो अशुद्ध वातावरण बन गया है गृह भी अशुद्ध बन गया है। उस गृह के अशुद्ध बनने से मानव यह कह सकता है कि हमारा गृह तो नारकीय बन गया है। तो मेरे प्यारे! यह सब अवकाश कहलाता है। यहाँ सर्वत्र ब्रह्माण्ड गति कर रहा है। लोक–लोकान्तर गति कर रहे हैं। प्रत्येक शब्द गति कर रहा है। मेरे प्यारे! देखो आज का विचार क्या कि हम आकाश के सम्बन्ध में अपनी शुद्ध, अशुद्ध विवेचना तो कल ही कर सकेंगे। आज का विचार तो केवल हमारा यह कह रहा है कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए हे मानव! इस अन्तरिक्ष को यदि तू शोधन करेगा, पवित्र बनाता चला जाएगा, तेरी वाणी में पवित्रता आती रहेगी तेरा अनतरिक्ष पवित्र रहेगा। जितना अन्तरिक्ष पवित्र रहेगा उतनी ही तेरे जीवन की आभा पवित्र रहेगी और वह जीवन की आभा तुझे स्वर्ग में परिणत कराएगी। मानो लोकों में परिणत करा सकती है। देवपूजा के सम्बन्ध में हम अपने विचार प्रकट कर रहे हैं। देवपूजा किसे कहते हैं? देवपूजा कहते हैं कि उसका हमें सदुपयोग करना है। हमें जैसे अवकाश हे, वायु हैं, इस वायु की तरंगों को जानना जो तरंगें भिन्न–भिन्न रूपों में रहती हैं कहीं वाणी बनकर के रहती हैं। यही वायु है जो, मानव के नेत्रों में रहती है। यही वायु है जो श्रोत्रों में रहती है। इसको 'दक्षिणार्थ' वायु कहते हैं। यही वायु है जो मानव को गति दे रही है। गतिशील बना रही है। मानो ये जो जो गतियाँ हैं ये सब अन्तरिक्ष में ओत–प्रोत हो जाती हैं। तो इसीलिए हमें उनको जानना उनका सदुपयोग करना, अन्तरिक्ष का सदुपयोग तो हम वाणी से कर सकते हैं। अवकाश का शुद्ध बनाना हमारा कर्तव्य है।

पाण्डित्य की दृष्टि में, यौगिक दृष्टि में, दार्शनिक की दृष्टि में अन्तरिक्ष के सम्बन्ध में नाना प्रकार की विवेचनाएँ रहती हैं। यह चर्चाएँ पुत्रो! मैं कल करूँगा। आज का वाक्य यह समाप्त होने जा रहा है। आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि हे मानव तू स्वर्ग को चल, तू स्वर्ग को प्राप्त करने वाला बन। तू आनन्द को प्राप्त कर। आनन्द ही तेरे जीवन की साथी है आनन्द ही तेरा जीवन है। आनन्द ही तेरा स्वभाव है। उस आनन्द को प्राप्त कर। **आनन्द तुझे प्रभु के द्वार पर प्राप्त होगा।** प्राणी बेटा! ऊँचे–ऊँचे व्याख्यानों से आत्मा को नहीं जान सकता। बेटा! नाना वाक्यों को श्रवण करने से भी नहीं जान सकता। अरे! आत्मा को तो वह जानता है जो आत्मा को वरण कर लेता है। वरण कैसे किया जाता है? यह चर्चा मैं कल प्रकट करूँगा। आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय क्या? कि हम परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुण–गान गाते हुए हम अपने चैतन्य प्रभु की आभा में रमण करते रहें। यह है बेटा! आज का वाक्य आज का वाक्य समाप्त। अब वेदों का पाठ होगा। निर्मल वेदान्त सम्मेलन माल रोड अमृतसर

६. आकाश तत्व 23–04–1977

जीते रहो!

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भाँति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुण गान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से जिन वेद–मन्त्रों का पठन–पाठन किया हमारे यहाँ वेद मन्त्रों के उच्चारण करने का जो क्रम है अथवा पठन पाठन की जो पद्धतियाँ हैं उसमें एक अनुपमता परम्परा से रही है। हमारे यहाँ भिन्न–भिन्न प्रकार की विचारधाराएँ और मस्तिष्क में नाना प्रकार की जो स्वर ध्वनि रहती है, उस ध्वनि के आधार पर मानव शब्दों का निर्माण करता रहा है। हमारे वैदिक साहित्य में एक 'शब्दार्थ काण्ड' शब्दों का मिलान करना कहलाया जाता है। हमारे ऋषि–मुनि जो मनीषि हुए हैं। जो मनन करते रहते हैं। वे अपने मस्तिष्क में जिसका निर्माण मेरे प्यारे प्रभु ने किया है हमारे मस्तिष्क के क्षेत्र में बेटा! एक वायु विशाल रहती है और उसमें जो तरंगें होती हैं, नस–नाड़ियों का निर्माण हो करके उसमें जो ध्वनि उत्पन्न होती है उसको परम्परा से ही ऋषिजन बेटा! अनुसन्धान करते रहे हैं और उस ध्वनि को ऐसा कहा है कि उसी में से स्वरों की उत्पत्ति होती है। यह जो नाना प्रकार के स्वर उत्पन्न होते हैं और भी नाना प्रकार की जो ध्वनियाँ हैं जैसे जटा पाठधन पाठ, माला पाठ, विसर्ग पाठ, उदात्त और अनुदात्त, और भी नाना उच्चरण करने के प्रकार होते हैं जैसे मधुगान होता है, एक दीपक गायन होता है, एक मानो हमारे यहाँ मल्हार कृति गायन होता है। तो ये नाना प्रकार के गायन मानो मस्तिष्क में जो ध्वनि होती है उसी के आधार पर उसका बाह्य जगत से तारतम्य हो जाता है तो दोनों का समन्वय हो करके जो भी गायनवेत्ता, ध्वनिवेत्ता जो संकल्प करता है उसी के आधार पर वही होना प्रारम्भ हो जाता है। उसको हमारे ऋषियों ने बेटा! अनाहद कहा है, उसको अनाहद ध्वनि कहते हैं। ब्रह्मरन्ध्र जब गति करता है तो नाना पंखुड़ियाँ गति करती हैं, मानो एक–दूसरे प्राण का नस–नाड़ियों में जो रूप–रूपान्तर होता रहता है,

मुनिवरो! वह जो ध्वनि है, वह एक देवी है। हे मानव! तू ध्वनि की पूजा करने वाला बन। क्योंकि वह ऐसी अनुपम देवी है, शब्दमयी देवी कहलाई जाती है। वह मानव के हृदय को बेटा! स्वच्छ बना देती है। हे मेरे देव! तू कितना करुणामय है कि आचार्यों ने जिस भी रूप से तुझे स्वीकार किया अथवा उड़ान उड़ी है उन्हीं रूपों में तेरा दृश्य दृष्टिपात होने लगाता है। मेरे प्यारे! वह जो मेरा चैतन्य देव है, जो मानव की प्राप्त हो रहा है, ममतामय के रूप में हमें नाना प्रकार की आभा प्रदान कर रहा है। मेरे प्यारे! हम उसी की उपासना करने वाले बनें, वही हमारा उपास्य देव है।

हमारे यहाँ मनीषिजन कहते हैं कि जब आत्मा, इन्द्रिय और मन के द्वारा जो कर्म करता है उसी को उसका फल प्राप्त होता है और मानव कर्म कहीं कर रहा है, विचार–चिन्तन कहीं हो रहा है, आभा का क्षेत्र कहीं है तो बेटा! वह ऐसा कर्म है जैसे कृषक ऊसर भूमि में अन्न की स्थापना करके अपने गृह को प्रवेश करता है। तो मुनिवरो! देखो विचार आता है कि हम ऐसे न बनें। हमारा जो भी कर्म हो, याग हो, यज्ञ हो, देवपूजा हो, मानो संसार का जितना भी कर्म है उसमें **आत्मा मन और इन्द्रियों को एक सूत्र में ला करके, तन्मय हो करके जो कर्म करता है वही मानव इस संसार में सफल होता है।** मेरे प्यारे! देखो इस वाक्य को मनीषि कहते हैं, परम्परा के ऋषिजन कहते हैं। उपनिवेषों में प्रवेश करने वाले परम्परा से इसकी घोषणा करते रहते हैं। तो आज जब हम अपने मन, इन्द्रिय और आत्मा को एक सूत्र में लाकर के कर्म करेंगे तो उसका क्षेत्र बनेगा, उसका क्षेत्रफल भी हमें प्राप्त होगा। **इसके विपरीत यदि हमारे मनों में चंचलता रहती है, नाना प्रकार के भोगों की कल्पना लगी रहती है और साथ में हम मोक्ष चाहते हैं तो पुत्रो! यह कदापि नहीं होगा।**

इससे पूर्व काल में हम यह उच्चारण कर रहे थे कि वह जो ममतामयी देवी है, जो हमारे दुर्गुणों को समाप्त करने वाली है। हे 'दुर्गश्चम! देवश्चम!' तू देवी बन करके हमारे दुर्गुणों को समाप्त कर। मेरे प्यारे! देखो, उसे ही सरस्वती प्राप्त होती है जो मानव अपने मस्तिष्क में चिन्तन करता हुआ मनीषि बनता हुआ और मस्तिष्क में अनाहद नाद जो ध्वनि होती है उसको जो मानव स्वीकार करता है उस पर आरूढ़ हो जाता है, स्थिर हो जाता है। मेरे प्यारे! देखो, वह सरस्वती माँ की गोद में प्रवेश करता है। वह जो सरस्वती है, जो ध्वनि करने वाली है, ध्वनियाँ करती रहती है, अनाहदनाद उसके समीप रहता है। नाना प्रकार का सितार–वाद अपने आँगन में ध्वनित करती रहती है सरस्वती को प्राप्त हो करके मानव का कण्ठ ,मुनिवरो! सजातीय होता है, मस्तिष्क सजातीय

होता है। उसका हृदय सजातीय होता है और, मस्तिष्क सजातीय होता है। उसका हृदय सजातीय होता है और वह अपनी सजातीयता का प्राप्त करता हुआ मेरे पुत्रो! देखो स्वरों को प्राप्त होता रहता है। मैंने बहुत पुरातन पुरातन काल में तुम्हें निर्णय देते हुए कहा था पुत्रो! कि संसार में मानव मानव आनन्द को चाहता है, परन्तु आनन्द तब तक प्राप्त नहीं होता जब तक ममतामयी माँ की लोरी हमें प्राप्त नहीं हो जाती। वह लोरी क्या है बेटा! जिसको हम अमृत कहते हैं बेटा! वह माता की लोरी बेटा! ज्ञान है, प्रकाश है, उसका ज्ञान का परिणाम ही प्रकाश है। उसको जो मानव पान करता है वह ममतामयी माँ की गोद में प्रवेश कर जाता है। मेरे पुत्रो! मैं इस क्षेत्र में तुम्हें विशेष वाक्य प्रकट करने नहीं आया हूँ, विचार–विनिमय यह देने के लिए आया हूँ कि प्रत्येक मानव को उस प्रभु का चिंतन करता है, उस देवी की आराधना करनी है जो हमारे अंग–अंग में मानो प्रवेश हो रही है और वह प्रवेश हो करके उसी की महिमा में हम गति कर रहे हैं। तो महिमावादी कौन है? वह ममतामयी है, चेतनता है। उस ध्वनि को हम अपने में धारण करते चले जाएँ। तो ऐसा मुनिवरो! मनीषिजन का मन्तव्य रहा है परम्परा से ही।

अन्तरिक्ष में गति

मुनिवरो! मैं तुम्हें पुनः से महर्षि विश्वश्रवा के यज्ञ में ले जाना चाहता हूँ। मैं यज्ञशाला में तुम्हीं प्रवेश कराना चाहता हूँ जहाँ ऋषिजन याग करने के लिए तत्पर हैं, सबसे पूर्व याग की भूमिका बना रहे हैं। याग का ज्ञान होना चाहिए। हम याग कर्म कर रहे हैं, उसका प्रकाश होना चाहिए। तो मेरे पुत्रो! देखो वह अग्न्याधान कर रहा है। मेरे प्यारे! वयु की वेदियों का निर्माण हो रहा है। मुनिवरो देखो वह जो त्रिवन्दन ऋषि हैं वह भयंकर वनों में जहाँ कोडलीव्रत ऋषि मानो अपना अनुसन्धान कर रहे हैं, अन्तरिक्ष के ऊपर अपना अनुसन्धान कर रहे हैं। मेरे प्यारे! यह विचार रहे हैं कि माता के गर्भस्थल में जब हम प्रवेश करते हें तो वहाँ अग्नि भी तपाती है, वायु भी शुष्क बनाती है, जल भी अपनी आभा को प्राप्त होता रहता है। परन्तु अन्तरिक्ष किस रूप में रहता है? तो वेद का आचार्य कहता है कि वह जो अन्तरिक्ष है माता के गर्भस्थल में उस अन्तरिक्ष का निर्माण होता है। यदि अन्तरिक्ष वहाँ नहीं होगा तो माता के गर्भस्थल में बाल्य का निर्माण नहीं हो सकता। क्योंकि परमाणुओं को सुगठित होने के लिए अवकाश चाहिए। मेरे प्यारे! मानव की अस्थियों में भी अन्तरिक्ष रहता है, श्रोतों में भी अन्तरिक्ष रहता है। नेत्रों में भी अन्तरिक्ष रहता है, श्रोत्रों में भी अन्तरिक्ष रहता है। नेत्रों में भी अन्तरिक्ष रहता है।, श्रोत्रों में भी अन्तरिक्ष रहता है, नेत्रों में भी अन्तरिक्ष रहता है। यदि अन्तरिक्ष नहीं होगा तो यह परमाणुवाद भ्रमण कहाँ करेगा? तो इसीलिए हमें अतना ही जान लेना चाहिए कि यह सर्वत्र ब्रह्माण्ड मानो अवकाश में गति कर रहा हे, यह आकाश कहलाता है। ब्रह्माण्ड अन्तरिक्ष में ओत–प्रोत है। उसी में मानो उसकी प्रतिष्ठा है। पुत्रो! कोडलीव्रत महर्षि अपनी विज्ञानशाला में विराजमान हो करके वह अनुसन्धान कर रहे थे अन्तरिक्ष के ऊपर। शब्दों का उच्चारण चल रहा था, स्वाहा कहकर अन्तरिक्ष में आहुति दे रहा था, मानो वह शब्द बना। आकार बना और आकार बन करके उसी के साथ में ऋषि का चित्र चलने लगा। तो विज्ञानशाला में जो यन्त्र विद्यमान थे, उन यन्त्रों में वह अपने ही चित्रों को दृष्टिपात कर रहा था जो शब्द के साथ में जो चित्र अन्तरिक्ष में गति कर रहा था, उसी चित्र को दृष्टिपात करता हुआ वह विचार रहा था कि यह तो अन्तरिक्ष को जा रहा है, यही तो अन्तरिक्ष है। मुनिवरो! वह अग्नि की तरंगों पर विद्यमान हो करके, वायु की धाराओं पर विद्यमान हो करके अन्तरिक्ष में परिणत करा देता है। तो मुनिवरो! देखो उस मानव का चित्र अन्तरिक्ष में ओत–प्रोत हो जाता है।

सबसे प्रथम शब्द के साथ मे जो चित्त की कल्पना करने वाले हैं वह आदि ब्रह्मा हैं। आदि ब्रह्मा ने इन स्वरों को कैसे जाना? आदि ब्रह्मा ने यह जाना जब वह व्याकरण को जानने लगे तो व्याकरण की मानो जो तरंगें थीं, व्याकरण के जो शब्द थे वह योगाभ्यास, समाधि में जब चले गए और वह अन्तरक्षि इन पंचतन्मात्राओं को अपने में परिणत करने लगे, उन्हें अनुभव करने लगे तो ब्रह्म जी को अपने चित्त के अन्तरिक्ष में शब्दों के साथ में दृष्टिपात होने लगे। तो मेरे पुत्रो! सबसे प्रथम हमारे यहाँ शब्दों की जो स्वर श्रृंखला है, शब्दों का जो एक कर्म है वह आदि ब्रह्मा ने इन स्वरों को जाना। ब्रह्मा के पश्चात महाराज शिव ने जाना। मेरे प्यारे! यह शिव आदि देवता के रूप में परिणत माने हैं। शिव हमारे यहाँ वास्तव में परमात्मा के ही नामकरण हैं। परन्तु इसके पश्चात वह इस प्रथा को, नियमावली में निर्मित कर देता है। तो उसी को वैदुष्त (पाण्डित्य) कहलाया जाता है। तो मेरे पुत्रो! ऋषि कोडलीव्रत ने यह विचारा कि यह जो आकाश में, अन्तरक्षि में अवकाश है, मेरा यह शब्द जा रहा है। यह अन्तरिक्ष में भ्रमण करने का स्थान है। जितना भी परमाणुवाद है संसार का, वह सर्वत्र अन्तरिक्ष में विद्यमान है। मानव के मुखारबिन्द में भी अवकाश है जहाँ–जहाँ शब्दों की रचना होती है वह आकाश के मिलान से होती है। मुनिवरो! जब तक अन्तरिक्ष या अवकाश नहीं होगा, प्राण ध्वनि नहीं होगी । तो इसीलिए मेरे पुत्रो! आचार्यजनों का यह सिद्धान्त है, हम अवकाश को चाहते हैं। मुझे स्मरण है बेटा! जग कोडलीव्रत एक समय शब्दों के ऊपर अनुसन्धान करने लगे, अपनी अनाहद ध्वनि को जानने लगे और वह ध्वनि उन्हें अन्तरिक्ष में जाती प्रतीत हुई तो उन्होंने विचारा कि इसके ऊपर तो अनुसन्धान किया जा सकता है। तो ऋषियों ने बेटा! अनुभव किया कि उन्हें क्षुधा नहीं लगती थी, क्षुधा क्यों नहीं लगती थी? क्योंकि जो परमाणुओं को जान लेता है वह क्षुधा से रहित हो जाता है। मेरे पुत्रो! उन्होंने विचारा कि अन्तरक्षि में तो सर्वत्र परमाणु है और वह अन्तरिक्ष हमारे यहाँ शरीरों में भी है। तो इसमें भी परमाणु गति कर रहे हैं तो ऋषियों ने बेटा! खेचरी मुद्रा को जाना। खेचरी मुद्रा को वे योगी करते हैं जो सूक्ष्म प्राणों को प्राणतव से मिलाना जानते हैं। बेटा! उस खेचरी मद्रा में यह विशेषता होती है कि उसके शरीर में जब क्षुधा लगती है तो जहाँ खेचरी मुद्रा की उसमें जल तत्व और वायु तथा अग्नि के परमाणु प्रवेश कर जाते हैं तो मुनिवरो! क्षुधा समाप्त हो जाती है। एक 'पिप्लादी मुद्रा' होती है, 'पिप्लादी' जो मुद्रा है उसमें यह विशेषता है कि मानव को जब पिपासा होती है, जल की इच्छा होती है तो वह मुद्रा को करता है। रसना के अग्रभाग में मानो बाह्य जगत में अग्रभाग को ले जाता है और उसको मानो देखो दो रूपों में, दूरिता में कर लेता है और उसके पश्चात उदान प्राण और अन्नाद प्राण दोनों का समन्वय हो करके वह जब बाह्य परमाणुओं को मानो अपने में धारण करता है और कुछ परमाणुओं को अपने में से त्यागता है ऐसा ऋषियों ने वर्णन किया है। पिप्लादी जो मुद्रा में उसमें यह विशेषता होती है कि जल के परमाणु आते हैं, शीतल बन करके आते हैं, मानव के आंतरिक जगत को बेटा! शीतल बना देते हैं और पिपासा समाप्त हो जाती है। हमारे आचार्य परम्परा में पुत्रो! ऐसा करते रहे हैं। हमें भी सौभाग्य प्राप्त होता रहा है।

आज मैं बेटा! उन क्षेत्रों में तो जाना नहीं चाहता हूँ विचार क्या? ये सब अन्तरिक्ष में विद्यमान रहते हैं। रसना के भी अग्रभाग के छिद्रों में अवकाश होता है, उस अवकाश के द्वारा मानव रसों का स्वादन करता है। मानो जैसे कड़वा है, कसैला है, मधु है मानो तिक्त है, अमृती है। छः प्रकार के रस–स्वादन होते हैं। मानव अपने में इन्हें धारण अपने में इन्हे रसना से ही तो धारण करता रहता है, इसे प्राप्त करता है। मुनिवरो! देखो ,यह जो मानव का शरीर है यह एक प्रकार का रथ ही कहलाता है। तुम्हें यह प्रतीत है कि यह रथ ही है। इस मानव शरीर में दस घोड़ों वाला यह रथ कहलाता है। मानो इनका जो वेग है, वेग को नियन्त्रण में लाने वाली जो धारा है वह मन कहलाता है और इस रथ में विद्यमान होने वाला आत्मा है, रथ का जो मार्ग है वह इन्द्रियों के विषय हैं। अब इन्द्रियों के विषय भोग–विलासों में ले जाओ तो मुनिवरो! देखो कुमार्ग कहलाता है और वही इन्द्रियों का जो विषय गम्भीरतम है। पंचतन्मात्राओं का विषय उनमें ले जाओगे तो तुम योगेश्वरतवत को प्राप्त होते चले जाओगे।

मुनिवरो! आज मैं आत्मा रूपी रथ के बारे में कोई चर्चा देने नहीं आया हूँ। आज तो केवल यही उच्चारण करने के लिए आए है कि यह संसार जो आकाश–मंडल है आकाश में किन्हीं–किन्हीं ऋषियों के मत आते हैं। ऋषियों ने ऐसा माना है जैसे सांख्य सिद्धान्त को स्वीकार करने वाले हैं। हमारे यहाँ सांख्य सिद्धान्त सृष्टि के प्रारम्भ से चला आ रहा है, मानो वेदांत में जो आत्मा का प्रकरण आता है वह भी सृष्टि के प्रारम्भ से आ रहा है। मुनिवरो! देखो दोनों के नाना प्रकार के मन्तव्य रहे हैं। सांख्यवादी सिद्धान्तवेत्ता तो कुछ यह कहते हैं कि आकाश में अपने परमाणु होते हैं।

परन्तु जो वेदान्त को जानने वाले हैं वह ऋषि कुछ ऐसा कहते हैं कि अवकाश है। इसमें कोई परमाणु नहीं है। मेरे पुत्रो! इसमें ऋषियों के भिन्न–भिन्न प्रकार के मत हैं, परन्तु एक मत हमारे विचारों में ऋषियों अनुसन्धान वेत्ताओं ने जब अनुसन्धान किया, विज्ञानवेत्ता जब विज्ञान के क्षेत्र में पहुँचे तो उन्हें कुछ ऐसा प्रतीत हुआ कि यह जो अन्तरिक्ष है यह केवल मानो अवकाश ही अवकाश है। इसमें अपना निजी कोई परमाणु नहीं है। यह अवकाश माना गया है। परन्तु अब विचार यह आता है कि मानव के शरीर को पंचतन्मात्रा वाला स्वीकार करते हैं और जब इसमें परमाणु नहीं हैं तो मात्रा कैसे हो गई, यह पंचतन्मात्रा कैसे बनी? इसमें ऋषियों ने यह कहा, अनुसन्धावेत्ताओं ने यह अपना मन्तव्य प्रकट किया है। उन्होंने यह कहा कि जहाँ पंचतत्व, पंच प्रकार के परमाणु होते हैं उन पाँचों प्रकार के परमाणुओं में यदि अवकाश नहीं होगा तो परमाणुओं का अपना अस्तित्व कुछ नहीं होगा। तो इसीलिए उनको भ्रमण करने के लिए अवकाश चाहिए। ऐसा ऋषि–मुनियों का मन्तव्य रहा है, उन्होंने यह कहा है कि पंचतन्मात्रा के मध्य अवकाश भी एक तन्मात्रा मानी है और अवकाश तन्मात्रा में होने ही से ही मानो सर्वत्र ब्रह्माण्ड में भ्रमण कर रहा है।

मुनिवरो! देखो मैंने बहुत पुरातन काल काल में कहा है। एक मानव नाना प्रकार के परमाणुओं को एकत्रित करता है। उसमें अवकाश विद्यमान होता है। जैसे मानो देखो वज्र है। वज्र में नाना प्रकार की धातु विद्यमान है। और उस वज्र में, धातु में भी अवकाश विद्यमान है। अवकाश नहीं होगा मानो वायु के परमाणु प्रवेश नहीं करेंगे। अवकाश नहीं होगा तो जल के परमाणु भी उसमें प्रवेश नहीं करेंगे। तो मानो यह अवकाश है और अवकाश के आँगन में ही अभ्रः रहता है। मानव एक यन्त्र का निर्माण करता है और वह यंत्र है अग्नि यन्त्र, उसमें अग्नि के परमाणु, वायु के परमाणु ओत–प्रोत करते हैं, उसमें अग्नि प्रदीप्त होने वाली है। परन्तु देखो यन्त्र में भी अवकाश विद्यमान है, अवकाश नहीं हेगा तो अग्नि के परमाणुओं को प्रदीप्त होने के लिए कोई स्थान प्राप्त नहीं होगा तो यन्त्र का अपना अस्तित्व कुछ नहीं रह पाएगा। तो इसीलिए हमारे ऋषि–मुनियों ने ऐसा वर्णन किया है, ऐसा कहा है कि अवकाश अवश्य है। देखो **अवकाश का अपना कोई परमाणु नहीं माना। परन्तु तन्मात्रा मानी गई है।** उसका गुण जो उसमें विद्यमान है। अवकाश का एक ही गुण है वह शब्द है, मानो शब्द ही उसमें ओत–प्रोत होता है। इसलिए ऋषियों ने यह स्वीकार कर लिया **कि जहाँ अवकाश होगा वहीं शब्द ध्वनि हो सकती है और जहाँ अवकाश नहीं होगा वहाँ शब्द ध्वनि हो ही नहीं सकती।** जैसे मुनिवरो! हमारे इस मानव शरीर में नाना प्रकार की ध्वनि होती हैं वहाँ अवकाश विद्यमान है, अन्तरिक्ष विद्यमान है, बाह्य जगत में भी जो ध्वनियाँ होती हैं मानो शब्द होते हैं, वह बिना अवकाश के नहीं हो सकते। यदि हमारे कण्ठ के अग्रभाग में उदान प्राण के साथ में यदि अवकाश नहीं होगा तो मानव शब्द की रचना कर ही नहीं सकता। तो इसीलिए मुनिवरो! मानव यन्त्रों का निर्माण करता है, वह यन्त्र जल के परमाणु लेता है, वायु के परमाणु लेता है, अन्तरिक्ष के परमाणु लेता है। इन तीनों परमाणुओं का मिलान करता हुआ वह यह चाहता है कि मैं सूर्य लोक की यात्रा करने जा रहा हूँ, मैं सूर्य यान का निर्माण कर रहा हूँ। अग्नि की प्रधानता उस यन्त्र में विशेषता होती है। अग्नि के परमाणुओं का पुट विशेष होता है और वह बलवती हो मानो जल उसके क्षेत्र की आभा रहती है। वायु का उसमें वेग रहता है। इन तीनों का यन्त्रों में मिलान करके और यन्त्रों के मध्य में एक अवकाश होता हे, जो परमाणु गति करते हैं और गति करके मानो देखो यह आगे जब रमण करते हैं। क्योंकि अग्नि के गर्भ में भी अवकाश है, वायु के गर्भ में भी अवकाश है। मानो यन्त्रों का निर्माण करने वाला, अवकाश को प्राप्त होता हुआ मेरे प्यारे! सूर्य की यात्रा करता रहता है।

मुझे वह काल स्मरण रहता है कि जब अपनी विज्ञानशाला में कोडलीव्रत ऋषि महाराज यह विचारने लगे कि मुझे अवकाश तो प्राप्त हो गया है कि अवकाश ही अवकाश है संसार में। अवकाश में ही यह सर्वत्र ब्रह्माण्ड और अन्तरिक्ष गति कर रहा है। लोक–लोकान्तर गति कर रहे हैं। परन्तु सूर्य की किरण जो आ रही है वह आकर के जब वह ऊर्ध्वा गति को पुनः प्राप्त होती है और हम उन किरणों को जानना चाहते हैं। तो ऋषि ने एक सूर्य अनुसन्धानशाला का निर्माण किया। मानो उन्होंने सात प्रकार के जलों का निर्माण किया। उसमें मानो श्वेत वर्ण भी है, नीलवर्ण भी है। यह वर्णों को उन्होंने जल के पात्र में परिणत किया। उसे पात्रो में परिणत कर दिया तो उसमें जो किरणें आ रही थीं, जिस प्रकार के उनके रंग–रूप थे, उसी प्रकार नाना प्रकार की तरंगें सूर्य की किरणों से आ करके उसी प्रकार का निर्माण कर रही थीं। तो मुनिवरो! सात प्रकार के अभ्रः वास्तव में तो पाँच हैं। मानो पाँचों प्राणों की आभा को निर्मित कर रहे थे और ऋषि ने यह विचारा कि अपनी विज्ञानशाला में उन्होंने एक यन्त्र का निर्माण किया। उसमें उन्हीं जलों को प्रवेश करके उसके पश्चात उसमें देखो नाना छिद्र उन्होंने बनाए और वे जो छिद्र थे उन छिद्रों में से सूर्य की किरण आ रही थी। उन किरणों के साथ मे जो सूक्ष्म–सूक्ष्म परमाणु आ रहे थे उनको वह यन्त्र में ग्रहण करने लगे। यन्त्रों में मुनिवरो! उन्हीं परमाणुओं को लेकर के उन्होंने एक यन्त्र का निर्माण किया। उन परमाणुओं को गति देने वाले अग्नि को पुट लगाकर के उस यन्त्र में विद्यमान होकर के बेटा! वे सूर्य की यात्रा करने लगे। अब ऋषि सूर्य की यात्रा कर रहा है। सूर्य को किरणों के साथ में वह यान जा रहा है। मुनिवरो! देखो इस पृथ्वी से लेकर के कुछ ही क्षणों में वह योगी सूर्य लोक को चला गया। सूर्य लोक में प्रवेश कर गया। क्योंकि जितनी गति से यह सूर्य की किरणें इस पृथ्वी पर आती हैं यह पार्थिव तत्व वाला प्राणी उन परमाणुओं को जानकर के वह आगे चलने वाला प्राणी सफलता को प्राप्त हो गया। वेद का ऋषि यह कहता है मुनिवरो! देखो लगभग ढाई घड़ी में ध्रुव मण्डल का प्रकाश इस पृथ्वी मण्डल पर आता है। अब ध्रुव यान का भी निर्माण इसी प्रकार होता है।

बेटा! मैं तुम्हें एक ऐसे क्षेत्र में ले गया हूँ जहाँ ऋषि–मुनि यान और विज्ञान को मानो क्रिया में लाकर के मोक्ष के लिए गमन करते हैं। क्योंकि इस विज्ञान में वे लिप्त नहीं होते और न ही इस विज्ञान का वह दुरुपयोग करना चाहते हैं। तो आज मुनिवरो! देखो विज्ञान के युग में तो तुम्हें ले जाना नहीं चाहता हूँ। परन्तु ऋषियों ने यह अनुसन्धान किया है, विचारा है कि परमाणुओं को रमण करने के लिए अवकाश की आवश्यकता है इसलिए आचार्यों ने इस आकाश में, अन्तरिक्ष में अपना कोई निजी परमाणु स्वीकार नहीं किया। तन्मात्रा मुनिवरो! देखो इनके मिलान से उत्पन्न होती है। इनके मिलान से ही मुनिवरो! उनमें प्रकाश रहता है। क्योंकि जब भी इन परमाणुओं का मिलान होता है तो उनमें अवकाश निश्चित है। चारों का मिलान एक सूत्र में होता है तो वहाँ भी अवकाश है क्योंकि वह जो सूत्र है जिनमें वह मुनिवरो! इसी सूत्र में सर्व ब्रह्माण्ड पिरोया हुआ है। लोक–लोकान्तर पिरोए हुए हैं।तो मुनिवरो! कोडलीव्रत ऋषि ने ऐसा कहा है अपने मन्तव्य देते हुए, अपने विचार देते हुए कुछ संक्षिप्त रूपों में कि मैं जब अपना अनुसन्धान करता रहा हूँ तो मेरी विज्ञानशाला में, इस परमात्मा के जगत में, इस ब्रह्माण्ड में, इस अन्तरिक्ष में तीस लाख आकाश गंगाओं का मैंने दिग्दर्शन किया है। अब मुनिवरो! एक आकाश गंगा में जहाँ अरबों, खरबों सूर्य गति करते हों जो ऋषि आकाश गंगा का भ्रमण कर सकता है बेटा! उसका अवकाश कितना विशाल होगा? आओ मेरे पुत्रो! मैं तुम्हें इस क्षेत्र में ले जाना नहीं चाहता हूँ। हमारे आचार्यों का भी यही मन्तव्य रहा है। जब अनुसन्धान किया गया, क्रिया में लाया गया। तो सांख्यवादी और वेदांतवादी दोनों का एक ही सूत्र प्राप्त हुआ। एक ही सूत्र में दोनों पिरोए गए। ऋषि–मुनि नाना प्रकार की धाराओं को ले करके चलते हैं। कोई विज्ञान को लेकर के चलता है कोई ज्ञान काण्ड को लेकर के चलता है। कोई कर्म काण्ड को लेकर के चलता है। कोई ईश्वरीयवाद को लेकर के चलता है। कोई मानो तत्वाद को लेकर के चलता है। कोई सिद्धांतवाद को लेकर के चलता है। परन्तु आपस में जब यह एक सूत्र में पिरोये जाते हैं तो मन्तव्य इनका एक ही रहता है। मेरे प्यारे! एक ही मन्तव्य है इन दार्शनिकों का ऋषि–मुनियों का।

जो ऊँची–ऊँची उड़ान उड़ने वाले ऋषि–मुनि होते हैं वह मरे प्यारे! इस ब्रह्माण्ड को पिण्ड में परिणत कर देते हैं और पिण्ड को ब्रह्माण्ड में परिणत कर देते हैं। ऐसे व्यापकवादी परमात्मा को एक रस स्वीकार करके जो एक रस रहने वाली चेतना ब्रह्म है उसके गर्भ में बेटा! वह मोक्ष को आनन्द में प्राप्त करते रहते हैं। आओ मेरे प्यारे! आज मैं विशेष चर्चा तुमहें प्रकट करने नहीं आया हूँ। तुम्हें यह प्रकट करने के लिए आया हूँ, किन्हीं आचार्यों ने मनस्तत्व को अनादि माना है क्योंकि इसका विनाश नही होता कल मैं मनस्तत्व की चर्चा करूँगा कि जो मन है जो संसार का विभाजन कर

रहा है। जो इन पंच तन्मात्राओं का विभाजन कर रहा है। एक–एक माता का विभाजन कर रहा है। नाना रूपों में परिणत कर रहा है। यह मन जो प्रकृति का सूक्ष्म तन्तु है उसका आकाश से क्या सम्बन्ध है? मुनिवरो! कल मुझे समय मिलेगा तो यह चर्चाएँ कर पाऊँगा। आजका का विचारा हमारा यह क्या कह रहा है? कि हम परमपिता की आराधना करते हुए आकाश–तत्व को जानें, वायु तत्व को जानें। मैंने इनका संक्षिप्त परिचय दिया है। एक–एक पद का मैंने सूक्ष्म रूपों से परिचय दिया है, विस्तार में नहीं, विस्तार में तो एक–एक माह लग जाता है, चिन्तन करने वालों के लिए वर्षों लग जाते है,। परन्तु आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय क्या है? मेरे प्यारे! यह जो अवकाश है यह दार्शनिकों ने परमाणुओं से रहित माना है। जैसे हमारे यहाँ चेतन–जड़ दोनों के मिलान से तीसरी वस्तु का निर्माण हो जाता है उसको हम सृष्टि कहते हैं। जैसे मुनिवरो! माता–पिता का रजवीर्य होता है तीसरी वस्तु उत्पन्न हो जाती है, उनको पुत्र–पुत्रियाँ कहते हैं। इसी प्रकार उन चारों तन्मात्राओं का जहाँ मिलान हुआ अन्तरिक्ष की तन्मात्रा इसमें नहीं होगी तो न इन मात्राओं का अपना कोई अस्तित्व रहता है। जैसे ब्रह्म–चेतना इस प्रकृति में पिरोई हुई रहती है, इसी प्रकार यह आकाश बेटा! इनमें पिरोया हुआ होता है। कल मैं इसके सम्बन्ध में मुनिवरो! कुछ ऋषियों का और मन्तव्य प्रकट करूँगा ।

आजका विचार–विनिमय क्या कि हम अपने देव की महिमा का गुणगान गाते चले जाएँ। हे मानव! तेरा जो शरीर है यह रथ है, इस रथ में विद्यमान होने वाली आत्मा है इन्द्रियाँ घोड़े हैं। लगाम उन घोडो का वह मन है मार्ग देखो, इन्द्रियों के विषय हैं। हे मानव! तू गम्भीर होकर अपने इन्द्रियों के विषय को प्राप्त कर, जिससे तुझे स्वर्ग और आनन्द प्राप्त हो। मेरी ममतामयी माँ जो सरस्वती हे, जो शब्दार्थ रूपों में, ध्वनियों में जिसको अनाहद रूप कहते हैं। इसकी चर्चाएँ मैं कल और प्रकट करूँगा। मस्तिष्क में आकाश कैसे रहता है, मानव किन रूपों में याज्ञिक बन करके रहता है। आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय क्या कि हम परमपिता परमातका की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुण–गान गाते हुए हम इस संसार सागर से पार हो जाएँ, यह है बेटा! आज का वाक्य समाप्त। अब वेदों का पाठ होगा। निर्मल वेदान्त सम्मेलन माल रोड अमृतसर

७. अंतरिक्ष 24–04–1977

जीते रहो!

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भाँति कुछ मनोहर वेछ–मन्त्रों का गुण–गान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने जिन वेद मन्त्रों का गठन–पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेद प्राणी का प्रसारण होता रहता है। जिस पवित्र वेद वाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की महिमा का गुण–गान गाया जाता है। जो आनन्मदमयी, पवित्रमयी, श्रोतमयी, चक्षुश्मयी जिसकी आभा विद्यमान है। नाना प्रकार की आभाओं में रमण करने वाला प्राणी सदैव अपनी आभा में नहित रहता है और उसी की आभा इस संसार में ओत–प्रोत है। यह जो संसार हमें नाना प्रकार के रूपों में दृष्टिपात आ रहा है, ये जो नाना प्रकार के इसके स्वरूप हैं, उन स्वरूपों में एक ममत्व दृष्टिपात आता है। क्योंकि वह जो मेरी आनन्दमयी, श्रोत्रमयी, चक्षुश्मयी वाङ.मयी जो एक शक्ति है वह मेरी ममतामयी सरस्वती बन करके हमारा वास्तव में कल्याण कर रही थी। और वह प्रेरणा दे रही है। हे माँ! तू हमारे जीवन को उद्बुध करने वाली है। तू कहीं गायत्री बन करके हमारे जीवन को उद्बुध कर देती है। कहीं मानो श्रोत्रीय बन करके ऊँचा बना देती है। ऊँची आभा में यह सर्वत्र ब्रह्माण्ड ओत–प्रोत रहता है। तो मेरे प्यारे! देखो, प्रत्येक मानव जब प्रातः स्मरणीय उस ममत्व को उस सरस्वती को धारण करता है। वह सरस्वती को कहाँ प्राप्त करता है वह उसकी श्रद्धा है। श्रद्धा कहाँ प्राप्त होती है? मानव के हृदय में रहती है। हे मानव! तुझे यह वेद का ऋषि कहता है कि तू अपने हृदय को व्यापक बना। अपने हृदय को ऊँचा बना। क्योंकि जिस हृदय में श्रद्धामयी, नेत्रमयी, आनन्दमयी मानो वह सतपथी ओत–प्रोत रहती है। तो आओ मेरे प्यारे! हम अपने जीवन में एक ऐसी आभा को जन्म देना चाहते हैं जिस आभा में रमण करने के पश्चात मानव अमरावती को प्राप्त होता रहता है। वह अमरत्व को प्राप्त होता रहता है।

आज तुम्हें यह उच्चारण करने के लिए आए हैं पुत्रो! कि हमारा जीवन वास्तव में इतना पवित्रम होना चाहिए कि जैसे वेद के आचार्यों ने एक–एक मन्त्र में कहा है। आज मैं इन वाक्यों को उच्चारण करता रहता हूँ। वेद का वाक्य यह कहता है कि जो मानव विज्ञानयुक्त है मानो मन और आत्मा मन से आत्मा नहीं, आत्मा से मन पर अधिकार करे तो वह जो मानव हे यह अमृत बन जाता है। क्योंकि आत्मा का प्रकाश है उसके पिछले भाग में मन है। क्योंकि यह जो मन है यह हमारे जीवन को नाना प्रकार की ऐसी आभा में ले जाता है जहाँ मानव को प्रकाश भी प्राप्त नहीं होता। प्रकाश से रहित हो जाता है। तो इसलिए हे सोमाग्नि, विचारने वाली अग्नि तू चिन्तन कराती रहती है। तेरा चिन्तन करने वाले जो पुरुष हैं वह विज्ञान में रमण करते हैं और विज्ञानयुक्त जो प्राणी होता है वह इन्द्रियों के विषय को अध्ययन करता रहता है। इन्द्रियों के विषय को जानता हुआ वैज्ञानिक कहलाता है। और जो इन्द्रियों के विषय को विचारयुक्त हो करके इनको आंतरिक जगत की आभा में युक्त कर लेता है तो बेटा! वह मानव आत्मतत्व को प्राप्त होता रहता है। वह अमृतार्थी बनता रहता है। तो मुनिवरो! आज हमें अमृतार्थी बनना है। अमृत को पान करना है। अमृत को कौन पान करता है? मेरे प्यारे! अमृत को पान करने वाला वह वैज्ञानिक होता है जो इन्द्रियों के विषय को एकत्रित करके उनका साकल्य बना करके मेरे प्यारे! अन्तरात्मा में याग करता रहता है। वह स्वाहा करता रहता है। वाणी को पवित्र बनाता रहता है। स्वाहा कह करके ही मुनिवरो! देवताओं के समीप चला जाता है। वह जो विज्ञान से युक्त प्राणी है वही आगे चल करके बेटा! देवता बनता है। वही महान बना करता है।

अन्तरिक्ष की यात्रा

आज मैं तुम्हें उस क्षेत्र में ले जाना चाहता हूँ जहाँ नाना ऋषिवर ऊँची–ऊँची उड़ान उड़ते रहे हैं। उनकी उड़ान इतनी महान रही है कि उनकी उड़ान में बेटा! सर्वस्व रस ओत–प्रोत रहता है। आओ मैं तुम्हें अन्तरिक्ष की यात्रा कराना चाहता हूँ। जहाँ ऋषि–मुनि विद्यमान हो करके बेटा! अपने यन्त्रों का निर्माण करते रहते थे। उन यन्त्रों में विद्यमान हो करके वह नाना लोक–लोकान्तरों में गति करते रहते थे। आओ, मैं आज तुम्हें पुनः से अन्तरिक्ष की यात्रा कराना चाहता हूँ। जिस अन्तरिक्ष की यात्रा करने वालों में महात्मा ध्रुव हुए हैं। देवर्षि नारद हुए हैं। स्वेतकेतु हुए हैं। महर्षि भादद्वाज हुए हैं। ब्रह्मचारी सुकेता हुए हैं। ब्रह्मचारिणी शबरी हुई है। भगवान राम हुए हैं। ये सब अन्तरिक्ष की उड़ान उड़ते रहते थे। बेटा! जो अन्तरिक्ष की उड़ान उड़ता है वह मानव महापुरुष कहलाता है। वह पवित्रता को प्राप्त करता है। इस पृथ्वी के आँगन के निचले स्थल को दृष्टिपात करते रहोगे, मुनिवरो! ध्रुव को दृष्टिपात करते रहोगे तो ध्रुवा गति बन जाएगी। ऊर्ध्व में गति रहेगी तो ऊर्ध्व को प्राप्त होते रहोगे। इसमें भी दो मन्तव्य हैं। मानो एक मानव तो संसार के व्यापार में नीचे को दृष्टिपात करेगा तो उसका व्यापार, उसकी मानवता महान कहलाती है। मुनिवरो! आध्यात्मिकवाद में, आत्मा के क्षेत्र में मानव को ऊँचा दृष्टिपात करना चाहिए।

मेरे प्यारे! एक मेरी प्यारी माता है। माता अपने प्रारब्ध के आधार पर उसका जन्म हुआ है, वह अपने संस्कारों को ले करके आई है। यदि उसकी ऊर्ध्वागति हो जाए संसार के व्यापार में, तो उसके जीवन का अस्तित्व समाप्त हो जाएगा, परन्तु उसका कर्तव्य है कि वह नीचे को दृष्टिपात करे, नीचे को ही दृष्टिपात करती रहे। वेद का ऋषि कहता है वह माता परब्रह्म को पा करके ब्रह्मा बन जाती है जो माता की गति नीचे को रही है। नीचे की दृष्टि का अभिप्राय यह कि अपने से जो मानव द्रव्यहीन है उनको दृष्टिपात करती है, और जो अपने से ऊँचे द्रव्यपति हैं उनके आँगन का

इतनी ऊँची उड़ान नहीं उड़ना चाहिए। अभिप्राय क्या कि मेरे से जो निचले प्राणी हें वह भी तो इसी प्रभु की सृष्टि में रहते हैं। मानो देखो, मुझे अपने जीवन को ऐसे क्षेत्र में ले जाना है जिससे मेरा गृह पवित्र बनता है। तो मेरे पुत्रो! अभिप्राय क्या है कि वह माता ब्रह्मा कहलाती है जो मुनिवरो! अपने से द्रव्यहीनों को दृष्टिपात करती रहती है, विचारती है जो मुनिवरो! अपने से द्रव्यहीनों को दृष्टिपात करती रहती है, विचारती रहती है कि द्रव्य तो प्रभु की प्रतिभा है, प्रभु की देन है। मैं प्रभु के द्वार पर चला जाऊँ तो मेरे जीवन की तरंगें ब्रह्म से मिलान हो करके, सर्वत्र यह ममत्व समाप्त होकर के इसमें व्यापकवाद आ जाएगा तो ऐसा मेरी प्यारी माता जब यह विचारती रहती है तो उसके जीवन में सार्थकता आती है।

ब्रह्मवाद में ब्रह्मज्ञान में ऊँचा विचार रहना चाहिए। ब्रह्म में ऊँचे विचारों में जाना चाहिए। मेरे प्यारे! देखो—ब्रह्मनिष्ठ विद्यमान हैं, ब्रह्मवेत्ता विद्यमान हैं, नाना दार्शनिक विद्यमान हैं, वहाँ मानव उड़ता रहता है। मेरी प्यारी माता का मुझे वह काल स्मरण आता रहता है, जब चाक्राणि गार्गी अपने आसन पर विद्यमान रहती तो सिंहराज, मृगराज उनकी वार्ताओं को श्रवण किया करते थे। बेटा! वह कितनी ऊँची उड़ान है, ब्रह्मवेत्ताओं की उड़ान है वह इतनी विचित्र है कि मानव उसमें उड़ान उड़ता रहता है, मानव एकांत स्थली में विद्यमान हो करके उड़ान उड़ता रहता है। मेरे प्यारी माता उड़ान उड़ती रहती है। यह संसार क्या है? इसके ऊपर चिंतन होना चाहिए। यह पंच खम्बों वाला जो जगत है यह क्या है? तो मुनिवरो! इसके ऊपर चिंतन होना प्रारम्भ हो जाता है। परिणाम यह होता है कि अपनी आत्मा और विज्ञान से युक्त हो करके आत्मा का मिलान हो जाता है, इन्द्रियाँ पवित्र हो जाती हैं, मन सारथी बन करके अपने रथी को ऊँचे लक्ष्य पर पहुँचा देता है जिस लक्ष्य पर उसे जाना है। मेरे प्यारे! उस मानव का जो लक्ष्य है वह ब्रह्म ही उसकी उड़ान है। ऐसे जो विवेकी पुरुष होते हैं, चिंतन करने वाले पुरुष होते हैं वह बेटा! इस संसार सागर से पार हो जाते हैं। आओ मेरे प्यारे! आज मैं तुम्हें उस अन्तरिक्ष की यात्रा कराने ले जा रहा हूँ, क्योंकि अन्तरिक्ष ही हमारा जीवन है, अन्तरिक्ष में ही हमारे जीवन की आभा का प्रादुर्भाव होता है। मानो आभाएँ उत्पन्न होती रहती हैं। तो यह जो अन्तरिक्ष है यह हमारे जीवन का मौलिक है, वैज्ञानिकों का मूलक है। मेरे प्यारे! ऊँची से ऊँची उड़ान उड़ने वाला विज्ञानवेत्ता अन्तरिक्ष से बाह्य—जगत में नहीं पहुँच पाता। परन्तु जो आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ता है, आत्मिक विज्ञानवेत्ता है वह चेतना के माध्यम को बनाकर के श्रद्धामय अपने जीवन को बना करके, आत्मा को माध्यम बना करके जीवन की उड़ान उड़ते हैं। इस ब्रह्म की चेतना में यह अवकाश का पंचीकरण हो रहा है। हमारा जितना भी विचार है वह सब अन्तरिक्ष में ओत—प्रोत रहता है।

मेरे प्यारे! मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें निर्णय देते हुए कहा था कि महाराजा विश्वश्रवा भी जब यज्ञशाला में प्रवेश होने आए तो विश्वश्रवा, उद्दालक अपने विचार प्रकट करते हुए कहता है कि मैं अपनी आभा मैं रमण कर रहा हूँ, मैं अपनी आभा में आभायित हो रहा हूँ, मानो इस प्रकार की वह अपनी उड़ान उड़ रहा है, अपनी ऊँची उड़ान उड़ने वाला जो विचित्र पुरुष है वह बेटा! अन्तरिक्ष में चला जाता है, अन्तरिक्ष से अन्तःकृतियों में अन्तरात्मा में आ जाता है, जहाँ मानव के शरीर में इन्द्रियों की गोष्ठियाँ होती हैं, इन्दियों के विषय एकत्रित किए जाते हैं। उस इन्द्रियों के विषय को मानव एकत्रित करके बाह्य जगत में उनका याग कर देता है। जब बाह्य जगत में उनका याग कर देता है तो मानव के जीवन में खिलवाड़ नहीं रहता। वैज्ञानिक कोडलीव्रत यह विचार रहा है, जहाँ अग्निकुण्ड है वहाँ वायु के यन्त्र भी विद्यमान हैं। वहीं मुनिवरो! अन्तरिक्ष में उसके परमाणु गति करते हैं, उन परमाणुओं का समूह है। तो वह अपना निर्णय दे रहे हैं, अपना वाक्य प्रकट कर रहे हैं कि मेरे विचार में तो यह सर्वत्र ब्रह्माण्ड एक अवकाश कहलाता है, अन्तरिक्ष कहलाता है, इस अन्तरक्षि में ही मुनिवरो! नाना प्रकार की आभा विद्यमान रहती है। मैंने बहुत पुरातन काल में कहा,कोडलीव्रत ने एक यन्त्र का निर्माण किया था, उस यन्त्र में यह विशेषता रही कि उन्होंने शब्दों की आभा और अग्नि के पुट लगा करके वह यन्त्र अन्तरिक्ष में जाता था। बेटा! उसकी आयु एक करोड़ के लगभग थी, वह यन्त्र अन्तरिक्ष में भ्रमण कर रहा था, अब गति कर रहा है। क्योंकि जिस यन्त्र में अग्नि के परमाणु, वायु के परमाणु और अवकाश उसमें विशेषत्व के साथ होगा, जितना अवकाश होगा उन परमाणुओं के मध्य में ओर वह गति अपने आँगन में करते रहेंगे तो मुनिवरो! उतना आयु दीर्घ बन जाता है, उतना ही आयु विचित्र बन जाता है। मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें निर्णय देते हुए कहा था कि एक—एक करोड़ की आयु वाला जो यन्त्र है वह भ्रमण कर रहा है।

वैज्ञानिक कुम्भकरण

राजा रावण के विधाता कुम्भकरण विशेष वैज्ञानिक थे। क्योंकि भारद्वाज मुनि उनके गुरू कहलाते थे। वह एक समय अपने गुरू के चरणों को छू करके यह उच्चारण करने लगे कि महाराज! मैं अन्तरिक्ष में प्रवेश करना चाहता हूँ, अन्तरिक्ष के ही विज्ञान में रमण करना चाहता हूँ। भारद्वाज मुनि ने उन्हें कुछ युक्तियाँ प्रकट कीं और युक्तियाँ प्रकट करने से महर्षि भारद्वाज के कथनानुसार राजा रावण के विधाता कुम्भकरण एकांत हिमालय की कन्दराओं में विद्यमान हो करके वह छः—छः माह तक निद्रा का पान नहीं करते थे। वे ऐसे क्यों हो जाते थे, क्योंकि वे व्रती थे, वे अग्नेय अन्तरिक्ष के ऊपर विचार—विनिमय कर रहे थे, अन्तरिक्ष के परमाणुओं में मानो अग्नि की पुट लगा रहे थे। वायु के परमाणुओं में अग्नि की पुट लगा। करके बेटा! एक यन्त्र उन्होंने अन्तरिक्ष में त्यागा था। उस यन्त्र में यह विशेषता रही कि वह यन्त्र डेढ़ करोड़ वर्ष आयु का यन्त्र कुम्भकरण अन्तरिक्ष में त्याग कर रहा है और वह गति कर रहा है। जिस प्रकार लोक एक—दूसरे लोक की परिक्रमा करता है इसी प्रकार उस अवकाश में वह यन्त्र गति कर रहा है मेरे प्यारे! कुम्भकरण, ने हिमालय की कन्दराओं में विद्यमान हो करके लगभग बारह वर्ष तक अनुसन्धान किया। बारह वर्षों तक अनुसन्धान करके उन्होंने कुछ अग्नि के परमाणुओं को ले करके और कुछ जल के परमाणु ले करके, कुछ पृथ्वी के पार्थिव कण ले करके, विशेष वायु के परमाणु ले करके उन्होंने एक यन्त्र का निर्माण किया था। जो पूर्व प्रणाली में व्रनतकेतु ऋषि हुए थे। उस यन्त्र में उनका चित्र अपने लगा। अन्तरिक्ष में से चित्र आने लगे, उस 'चित्रवेतु' यन्त्र में। यह जिस प्रकार उपदेश देते थे अपने शिष्यों को, कुम्भकरण अपने यन्त्रों में उनको दृष्टिपात कर रहे थे। यह चित्र कहाँ रहते थे। ये ही तो चित्र हैं जो अन्तरिक्ष में विद्यमान रहते हैं, अन्तरिक्ष में गति करते रहते हैं। तो वैज्ञानिकजनों ने मेरे प्यारे! ऐसा माना है कि वैज्ञानिकों को दोनों प्रकार का ज्ञाना होना चाहिए। वह आध्याहित्मक विद्या का जानने वाले हों और परमाणुवाद के ऊपर उनका आधिपत्य हो। उसके पश्चात इस प्रकार के यन्त्रों का निर्माण कर सकते हैं।

मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें निर्णय देते हुए कहा था पुत्रो! कि राजा रावण के विधाता कुम्भकरण बड़े वैज्ञानिक थे कि वे निन्द्रजीत कहलाते थे। परन्तु मेरे पुत्र महानन्द जी ने ऐसा कहा है मुझे कि आधुनिक जगत ऐसा स्वीकार करता है कि वह 6 माह तक निद्रा में रहते थे परन्तु बेटा! ऐसा नहीं। वह 6—6 माह तक निद्रा को पान नहीं करते थे, वह वर्षों तक निद्रा को पान नहीं करते थे। निद्रा का अभिप्राय आलस्य कहलाता है, निद्रा का अभिप्राय अज्ञान कहलाता है। परन्तु वह सूक्ष्म से उस मन को विश्राम देते थे, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार को जब वह विश्राम देते थे तो मुनिवरो! देखो, वे अन्तर्ध्यान होकर के बाह्य जगत में से अपने को समेट करके आन्तरिक जगत में ले जाते थे। जिससे मानो उन्हें आत्मिक शक्ति प्राप्त हो जाती थी। तो मेरे पुत्रो! आत्मिक शक्ति कैसे प्राप्त होती है? मानो योग में निद्रा नहीं होती। योग तो योग कहलाता है। परमातमा से मिलान होता है। इसी प्रकार प्रकृति से जो मिलान करता है, परमाणुओं का जो संगठन करता है, परमाणुओं को एक—दूसरे में पिरो देता है मेरे प्यारे! वह निद्रा को प्राप्त नहीं होता।

देव पूजा

बेटा! राजा रावण के विधाता कुम्भकरण इसलिए भारद्वाज मुनि की विज्ञानशाला से नाना यन्त्रों को पान करने वाले अपनी अस्सीवीं प्रणाली में जो ऋषि हुए हैं उनके चित्रों को दृष्टिपात कर रहे थे। उस समय से चित्रो का उसी प्रकार का आकार बना हुआ है। मेरे पुत्रो ऋषि–मुनियों ने इस अन्तरिक्ष के क्षेत्र में विद्यमान हो करके कितना अनुसन्धान किया है। तो इसीलिए प्रत्येक मानव को अनुसन्धान करना है, उस अनुसन्धान की वेदी पर रमण करना है जिससे हमारा मानवीय जीवन विज्ञान को प्राप्त होता रहे।

मेरे प्यारे! देखो, कोडलीव्रतकेतु की मैं चर्चा कर रहा था। एक समय महर्षि 'त्रिवन्दक वेदकेतु' उनके द्वार पर पहुँचे तो उन्होंने कहा कि महाराज!, हमारे जो सबसे प्रथम उद्दालक ऋषि हुए हैं मैं उनके चित्रों को दृष्टिपात करना चाहता हूँ। वे चित्र कहाँ रहते हैं? तो ऋषि ने मन्त्र उच्चारण किया, आह्वान किया और आह्वान के साथ उन्होंने नाना प्रकार के परमाणुयुक्त जो यन्त्र थे उन यन्त्रों में ऋषि–मुनियों ने भारद्वाज मुनि और हरितत्त के चित्र उनकी विज्ञानशाला में, यन्त्रों में दृष्टिपात होने लगे। उन्होंने कहा कि महाराज! यह चित्र कहाँ रहते हैं? उन्होंने कहा, ये अन्तरिक्ष में रहते हैं। सर्वत्र जो अन्तरिक्ष है इसमें सर्वत्रता है परमाणु हैं, मानो एक शब्द है, शब्द के साथ में मानव का चित्र जाता है। ऋषि यह कहते हैं, आचार्यों ने यह कहा है कि एक श्वास जब लेता है मानव तो श्वास की जो गति है वह अन्तरिक्ष में जाती है, वह जब अन्तरिक्ष में जाती है तो शब्द के साथ में जितना परमाणु जाता है उन परमाणुओं से माता के गर्भस्थल में एक बालक का निर्माण हो जाता है। एक श्वास के द्वारा अरबों–खरबों परमाणु चले जाते हैं, अन्तरिक्ष में उन अरबों–खरबों परमाणुओं के साथ में। जैसे एक लोहित परमाणु हैं, उस लोहित परमाणु के साथ में एक कृतिका परमाणु है उसके साथ में करोड़ों परमाणु गति करते हैं। जितने आकार का वह मानव शरीर है उतने आकार में, उतने ही परमाणुओं का चित्र बन करके शब्द के साथ में अन्तरिक्ष में गति करता रहता है।

मुनिवरो देखो जैसे चित्त है। इस मानव शरीर का चित्त भी अन्तरिक्ष का स्वरूप माना गया है। हमारे ऋषि–मुनि यह कहते हैं, जब यह आत्मा मोक्ष को जाता है तो आत्मा का उदान प्राण के साथ में जो चित्त होता है, चित्त नाम, भूमि को कहते हैं जिसमें जन्म–जन्मांतरों के संस्कार विद्यमान रहते हैं। मेरे प्यारे! हमारे यहाँ अन्तरिक्ष की उपासना करने वाले देवताजन जो मुझे स्मरण रहा है, ऋषि–मुनियों ने बेटा! ऐसा अनुसन्धान किया है जो अपने **नाना जन्मों के संस्कार मानो चित्त में विद्यमान रहते हैं** और चित्त की जो आभा है, जो भूमि सूक्ष्म स्वरूप है उसका नाम चित्त कहलाता है। एक व्यष्टि चित्त होता है, एक समष्टि चित्त होता है। तो व्यष्टि चित्त को समष्टि चित्त में प्रवेश कर जाता है उस आत्मा के तीन शरीर होते हैं- स्थूल, सूक्ष्म और कारण है। तो सूक्ष्म शरीर को त्याग करके आत्मा लिंग शरीर में प्रवेश कर जाता है और लिंग शरीर में जब प्रवेश करता है इस व्यष्टि चित्त के समष्टि चित्त में प्रवेश कर देता है और समष्टि चित्त में वह संस्कार विद्यमान हो जाते हैं, **संस्कारों से इसका विच्छेद हो जाता है तब यह आत्मा ब्रह्म के आँगन में आनन्द ही आनन्द भोगता रहता है।** तो विचार–विनिमय क्या! यह जो समष्टि चित्त है, इसका जो वाक् है वह मानो अन्तरिक्ष में रहता है। जब चारों परमाणु अपनी गति करना अन्तरिक्ष में प्रारम्भ कर देते हैं उस समय चित्तों में नाना प्रकार की गति आना प्रारम्भ हो जाती है।

आजका हमारा वेद का ऋषि क्या कहता है? वेद का ऋषि यही कहता है "ब्रह्मणः देवम् लोकः" मेरे प्यारे! अन्तरक्षि में जाना है हमे। अन्तरिक्ष की आभाओं को जानने के लिए हम सदैव तत्पर रहें। अन्तरिक्ष हम किसे कहते हैं जहाँ भ्रमण करने को समय है। एक मानव भ्रमण कर रहा है, आकाश में भ्रमण कर रहा है। चाहे वह स्थूल से कर रहो हो, चाहे वह सूक्ष्म से कर रहा है, चाहे कारण लिंग में कर रहा हो, नाना प्रकार की आभाओं में वह प्रायः रमण करता रहा है, आभा में ओत–प्रोत रहता है। आजका हमारा विचार कहता है कि हम अपने मानवीय जीवन को समष्टि में ले जाना चाहते हैं जिस समष्टि में आकाश ही प्रवाहित रहता है। तो मुनिवरो! हम परमपिता परमातमा के भव्य जगत को विचारने वाले बनें। यह भव्य जगत है, इस भव्य जगत में जब हम आए हैं जो चिन्तन करना हमारा कर्तव्य है। हम इस संसार की प्रत्येक वस्तु को जान करके, अन्धकार में न रमण करके प्रकाश में पहुँचने का प्रयास करें। मेरे पुत्रो! आज तुम्हें अन्तरिक्ष की यात्रा कराना चाहते हैं। अन्तरिक्ष की यात्रा करने वाला मानव आभा में युक्त रहता है। यह सर्वत्र ब्रह्माण्ड मानो अन्तरिक्ष में सुगंठित हो रहा है, उसी में ओत–प्रोत हो रहा है। परमाणुओं की उपलब्धि रहती है। अवकाश में प्राप्त ओत–प्रोत हो रहा है। परमाणुओं की उपलब्धि रहती है। अवकाश में प्राप्त होता रहता है। इसी अवकाश में नाना प्रकार के यन्त्रों का निर्माण वैज्ञानिक करता रहता है और नाना प्रकार का जो विज्ञान है वह मानव को ऊँचा बनाता है। **विज्ञान से युक्त रहने वाला प्राणी अन्धकार को प्राप्त नहीं होता। वह सदैव प्रकाश को प्राप्त होता है।** परन्तु हमारे ऋषि–मुनियों की एक शैली रही है, वह शैली यही रही है ब्रह्माण्ड को पिण्ड से घटित कर देते हैं। जो ब्रह्माण्ड में गति है वही मानव के पिण्ड में गति हो रही है और पिण्ड की गति ही मानो ब्रह्माण्ड की गति का निर्माण कर रही है। ब्रह्माण्ड की गति, पिण्ड की गति का निर्माण कर रही है। परिणाम क्या? एक–दूसरे के पूरक हैं। तो ऋषि–मुनियों की, बुद्धिमानी की, ब्रह्मवेत्ताओं की शैली रही है उच्चारण करने की कि ब्रह्म की गति को पिण्ड से मिलान करना और पिण्ड की आभा को व्यापक बनाना। क्योंकि व्यापकता में धर्म है, व्यापकता में पंचीकरण हो रहा है। व्यापकता में अन्तरिक्ष माना गया है। व्यापकवाद में ही मानव अनुसन्धान करता है।

विचार–विनिमय यह कि हमारे आचार्यों ने सबको याग रूप से प्रकट किया है। मेरी प्यारी माता और पिता दोनों की यह कामना रहती है, वह अपने विचारों को अन्तरिक्ष में देते हैं, हमें सुसज्जित सन्तान को जन्म देना है। तो उससे पूर्व माता–पिता अपने विचारों को पवित्र बनाते हैं, अपने आहार को पवित्र बनाते हैं। उसके पश्चात मेरे प्यारे! वे पुत्र यागी बनते हैं, यागी बन करके पित्रता को प्राप्त होते हैं। तो आओ मेरे प्यारे! हमारे आचार्यों ने बहुत सी कोई सामग्री मानवीय सूत्र के लिए विद्यमान नहीं की। मानवीय संस्कृति में तो भोग–विलास की कोई सामग्री प्राप्त नहीं होती। न वे शब्द ही बन पाते हैं। देखो हमारे यहाँ तो सर्वत्र याग हो रहा है। अन्तरिक्ष में शब्दों का योग हो रहा है। व्यापक विज्ञान का याग कर रहे हैं। मेरे पुत्रो! माता–पिता सुसज्जित सन्तान को जन्म देते हैं। वे पितृ याग कर रहे हैं परमाणुओं की ऊर्ध्वगति बना करके 'ब्रह्मचरिष्यामि' को प्राप्त कर रहे हैं। अन्तरिक्ष में अपनी उड़ान उड़ते हैं। यह सर्वत्रता में मुझे अन्तरिक्ष ही अन्तरिक्ष दृष्टिपात होता है। जहाँ भी तुम दृष्टिपात करोगे बेटा! वहाँ व्यापकवाद है, जहाँ व्यापकवाद है वहाँ धर्म है, जहाँ धर्म है वहीं महान विज्ञान है। जहाँ विज्ञान हे वहाँ दो प्रकार के विज्ञान आध्यात्मिक और भौतिकवाद का समन्वय कर देते हैं,–दोनों का विलय कर देते हैं। मेरे प्यारे! दोनों का विलय करने वाला जो महापुरुष है वह परमात्मा के समष्टि चित्त में प्रवेश करके उसके आनन्द को प्राप्त करने लगता है। तो आजका हमारा विचार–विनिमय क्या कि आज हम अपने प्रभु की महिमा का गुण–गान गाते हुए अन्तरिक्ष मे ओत–प्रोत होते चले जाएँ।

स्मरण शक्ति

अन्तरिक्ष में जो शब्द विद्यमान हैं उन्हीं से संसार का वातावरण बनता है। उन्हीं से मानव की अतिवृष्टि, अनावृष्टि होती है। उसी के कारण, आभा जागरूक होती रहती है। अरे! अन्तरिक्ष में ही तो वे शब्द विद्यमान होते हैं जो मानव के विचारों का परिवर्तन कर देते हैं। **मेरे प्यारे! इस मानव के शरीर में 72 करोड़, 72 लाख, 10 हजार, 2 सौ दो नाड़ी कहलाती हैं।** परन्तु कोई नस–नाड़ी ऐसी नहीं है जहाँ वेद की पोथी की पोथी विद्यमान न हो। कोई स्थली ऐसी नहीं है जहाँ बाल्यकाल की वार्ता वृद्ध काल में स्मरण न आ जाए। इस प्रकार के शब्द हमारे यहाँ विद्यमान हों। मेरे प्यारे! यह क्या है? मैंने लाखों वर्षों पूर्व गुरू चरणों में विद्यमान हो करके कुछ संहिताओं का अध्ययन किया था, कुछ शाखाओं का अध्ययन किया।यह सब कुछ क्या हो रहा है? मानव के जीवन में यह क्या खिलवाड़ हो रहा है। मेरे प्यारे! देखो यह जो शब्द हैं यह जो मानव की स्मरण–शक्ति है यह सब अन्तरिक्ष में रहती है। जैसे बाह्य–जगत अन्तरिक्ष में सब संस्कार गति कर रहे हैं। ऐसे ही मानव के

शरीर में भी अन्तरिक्ष है। इस अन्तरिक्ष के गर्भ में ये परमाणु, ये तरंगें भ्रमण कर रही हैं। वृद्धकाल आता है, अपना सहपाठी उसे जब प्राप्त होता है। सहपाठी कहता है देखो बाल्यकाल में हम कैसी वार्ता प्रकट करते थे? वह स्मरण शक्ति जागरूक हो जाती है। बाल्यकाल की स्मरण शक्ति मानव को वर्षों के पश्चात आ गई। 100–100 वर्षों के पश्चात स्मरण शक्ति आ जाती है। अरे! वह स्मरण शक्ति का केन्द्र कहाँ है? मुनिवरो! **उस स्मरण शक्ति का केन्द्र भी अन्तरिक्ष कहलाता है।** वह अन्तरिक्ष में रहता है। क्योंकि अवकाश हमारे इस मानव शरीर में भी है। उस अवकाश का व्यापक जो अन्तरिक्ष है उससे समन्वय होता रहता है, समन्वय हो करके इससे वह वार्ता अपनी प्रारम्भ हो जाती है। वे ही चित्र आने प्रारम्भ हो जाते हैं। मानो बाल्कयाल में 50 वर्षों पूर्व जिस माता का निधन हो गया, उसका चित्र अन्तरिक्ष में विद्यमान है।

वाह रे देव! तूने इसे पिण्ड को कैसा अद्भुत रचाया हे। आज कोई मानव इस अपने पिण्ड को नहीं जानता, वह ब्रह्म की आभा को क्या जान सकता है। मेरे प्यारे! पिण्ड को जो मानव जान लेता है वह ब्रह्माण्ड को जान लेता है। **जो ब्राह्मण्ड को और पिण्ड को जान लेता है वह परमात्मा के आनन्द को प्राप्त करता है उसको बेटा! मोक्ष कहते हैं।** आओ मेरे प्यारे! देखो हमारी जितनी भी चित्रावलियाँ हैं हमारा जितना भी यह सब अन्तरिक्ष में खिलवाड़ हो रहा है। अरे! अग्नि कहाँ रहती है? मुनिवरो! अग्नि अन्तरिक्ष में रहती है, काष्ठ में रहती है, काष्ठ में भी अन्तरिक्ष विद्यमान है। मेरे प्यारे! देखो एक मानव पौधे को जल का सींचन कर रहा है। उसकी पत्तियाँ प्रफुल्लित हो रही हैं, उसकी शाखाएँ प्रफुल्लित हो रही हैं। अरे! हम तो उसको नीचे से सींचन कर रहे हैं, ऊर्ध्वगति में कैसे? अग्नि की तरंगों में अन्तरिक्ष होता है, वायु की तरंगों में अन्तरिक्ष होता है। मेरे प्यारे! उनमें प्राणी की आभा और प्राणों के गर्भ में भी अन्तरिक्ष होता है। तो मुनिवरो! देखो अवकाश में वह जल गति कर रहा है। विभाजन हो रहा है। मेरे प्यारे! देखो, अन्तरिक्ष को विभाजन करने वाला कौन है?

मन

मेरे पुत्रो! अन्तरिक्ष में जो परमाणुओं का विभाजन हो रहा है, चित्रों को भिन्न–भिन्न करता है मेरे प्यारे! वह समष्टि मन कहलाता है। हमारे यहाँ दो प्रकार के मन होते हैं। एक विशेष होता है, एक सामान्य होता है। जो विशेष होता है, वह मानव के पिण्ड में रहता है। जो सामान्य होता है वह अन्तरिक्ष की इन तरंगों में भ्रमण करता रहता है। एक–एक परमाणु का विभाजन कर रहा है, एक–एक तरंगों का विभाजन कर रहा है। यह कौन है? यह मन ही तो है, इस मन की आभा अन्तरिक्ष में रहती है। मानो देखो महत्तत्व से इस मन का निकास होता है। महत्तत्व क्या है? उसे मेरे प्यारे! अवकाश अन्तरिक्ष "अप्रीहि लोकः", उसके कारण अन्तरिक्ष कहलाता है। **जिस तत्व के कारण शब्द बनता है, उसका नाम महत्तत्व है, वह चेतना है। उस चेतना में से प्रकृति का सबसे सूक्ष्मतम तन्तु हमारे यहाँ मनस्तत्व कहा जाता है।** मेरे प्यारे! वाहन बन करके पृथ्वी में जलों का विभाजन कर रहा है, नाना प्रकार की वनस्पतियों का निर्माण कर रहा है। मुनिवरो! वही मन है जो जल की तरंगों में जाकर के उसका विभाजन कर रहा है। वही मन है मेरे प्यारे! देखो जो वायु की तरंगों का विभाजन कर रहा है, वही मन है जो अन्तरिक्ष में जाकर के स्थिर हो जाता है। मेरे प्यारे! वह अन्तरिक्ष का एक अवृत रूप माना गया है।

विचार–विनिमय क्या? आज मैं तुम्हें यह उच्चारण कर रहा हूँ कि **यह मन, महत्तत्व की तरंगें हैं।** प्रकृति का सबसे सूक्ष्मतम तन्तु यदि कोई है तो वह मनि राम है। बेटा! मानव के सहित कैसा खिलवाड़ हो रहा है? एक मानव देखो अपने मन ही मन में विभाजन कर रहा है।यह माता है, पिता है, पुत्र है, विभाजन हो रहा है और जिस प्रकार का मुनिवरो! देखो वह प्राणी है विभाजन करने वाला। जिस प्रकार के चित्र आते रहते हैं, उसी प्रकार का मानव के मस्तिष्क में चित्रण हो रहा है। पत्नी का स्वरूप दृष्टिपात करो पत्नी का चित्र आ जाता है। माता का स्वरूप दृष्टिपात करो तो माता का चित्र आ जाता है। मेरे प्यारे! **यह सब अन्तःकरण हैं।** जिसमें अवकाश विद्यमान है, जिसमें नाना चित्र भ्रमण करते रहते हैं, मेरे प्यारे! जब चित्र भ्रमण करते हैं यह जो मनस्तत्व है, यह जो विभाजन करता है तो सर्वत्र चित्र उसके समीप आ जाते हैं। वह सर्वत्रता में भ्रमण करता रहता है। अरे प्रभु! तेरी सृष्टि में कैसा खिलवाड़ हो रहा है मानव के लिए? है। मेरे प्यारे! मानव इन सब प्रवृत्तियों को इन तरंगों को समेट करके अनतःकरण में जो चित्त विद्यमान है उसमे त्याग देता है व्यष्टि चित्त मे ले करके, समष्टि चित्त में प्रवेश करता है तो मेरे प्यारे! यह जो मनस्तत्व है यह अन्तरिक्ष में अपने महत्तत्व की तरंगों में ओत–प्रोत हो करके सर्वत्र विद्यमान हो जाता है।

आज मैं पुत्रो! विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ। बहुत ऊँची उड़ान उड़ने मैं चला गया, मैं मन की उड़ान तो बेटा! द्वितीय काल में प्रकट करूँगा। आजका विचार–विनिमय तो केवल इतना ही है कि हम इस अन्तरिक्ष में बेटा! सर्वत्र खिलवाड़ हो रहा है। अन्तरिक्ष में ही भ्रमण कर रहा है प्राणी। प्रत्येक परमाणु गति कर रहा है, शब्द गति कर रहा है आकार सहित कर रहा है। मेरे प्यारे! ऋषि–मुनियों ने बहुत तप किया। तप करने के पश्चात इन आभाओं को मुक्त किया है। आज हम ममत्व को प्राप्त होते हुए, परमपिता परमात्मा की उपासना करते हुए अपने व्यष्टि जगत को जान करके समष्टि जगत में प्रवेश कराने की हम चर्चा कर रहे थे। हम अन्तरिक्ष के विषय का,यह निश्चय कर लें, स्थिर हो जाएँ कि मुनिवरो! पंचीकरण हो रहा है, अवकाश उनमें भ्रमण कर रहा है। इसलिए मुनिवरो! इसको पंचतत्व कहा जाता है। वास्तव में अन्तरिक्ष कोई तत्व नहीं माना गया। वह चतुर्थता के सन्निधान से मेरे प्यारे! वह इनके मिलान से इन पंचतन्मात्राओं के द्वारा इसका निर्माण हुआ है। तो बेटा! यह है आजका हमारा विचार। आज के विचार उच्चारण करने का अभिप्राय क्या कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुण–गान गाते हुए हम इस संसार सागर से पार होने का प्रयास करें। यह है बेटा! आजका विचार। आजका विचार बेटा! अब समाप्त! अब वेदों का पाठ होगा। अमृतसर निवास स्थानः सेठ राम प्रकाश जी समय रात्रि 8 बजे

८. उत्तरायण–दक्षिणायन 20–04–1977

जीते रहो!

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भाँति कुछ मनोहर वेद–मन्त्रों का गुण–गान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद–मन्त्रों का पठन–पाठन किया, हमारे यहाँ परम्परागतों से ही उस मनोहर वेद वाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेद वाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की प्रतिभा का वर्णन किया जाता है। उसी की प्रतिभा से यह सर्वत्र ब्रह्माण्ड प्रतिभाषित हो रहा है और ऐसा प्रतीत हो रहा है जैसे उस परमपिता परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान से गुंथा हुआ उस ब्रह्म चेतना में रमण कर रहा है। सर्वत्र ब्रह्माण्ड उस ब्रह्म चेतना के ही आँगन में गति करता रहता है।

आज का वेदमन्त्र भी कुछ कह रहा था "ब्रह्माणस्यंच ब्रह्म लोक व्यापकम गताः विश्व वृत्त देवो।" मानो यह सर्वत्र ब्रह्माण्ड, मानवमात्र ही नहीं, प्राणीमात्र और सर्वत्र ब्रह्माण्ड उस ब्रह्मचेतना में गुंथा हुआ सा दृष्टिपात होता है। जिस प्रकार माला का धागा है, धागा एक सूत्र है और सूत्र में नाना मनके पिरोए जाते हैं। जब मनके पिरो देते हैं तो वह माला बन जाती है। सूत्र और मनको दोनों का सम्बन्ध है। इसी प्रकार जो ब्रह्म सूत्र है, वह प्रकृति का जितना भी परमाणुवाद है अथवा अणुवाद है जितना भी जगत तुम्हें दृष्टिपात हो रहा हे यह ब्रह्म सूत्र में पिरोया हुआ है और उस ब्रह्म सूत्र में ही यह सर्वत्र ब्रह्माण्ड गति कर रहा है, सर्वत्र लोक–लोकान्तर गति कर रहे हैं।

देव पूजा

आओ मेरे पुत्रो! आज मैं तुम्हें विशेष चर्चा प्रकट नहीं करूँगा इस सम्बन्ध में। ब्रह्म सूत्र की चर्चाएँ तो मैं समय–समय पर करता ही रहता हूँ और भी करने का मुझे सौभाग्य प्राप्त होता रहता है। आजका हमारा वेद का ऋषि क्या कह रहा था? आज मैं तुम्हें उस आसन पर ले जाना चाहता हूँ जो आज का वेद मन्त्र हमें प्रेरित कर रहा है अथवा प्रेरणा दे रहा है उस क्षेत्र में मैं तुम्हें ले जाना चाहता हूँ।

मेरे पुत्रो! हमारे यहाँ नाना ऋषिवर नाना प्रकार का अनुसन्धान करते रहे हैं। महर्षि याज्ञवल्क्य ने अपने जीवन में बहुत अनुसन्धान किया और उनकी पत्नी कात्यानी ने और मैत्रय ने भी इसी प्रकार तपश्चर का अपना जीवन बनाया। महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने तपस्या में परिणित हो करके एक अपने जीवन को ब्रह्मसूत्र में पिरोने का प्रयास किया। हमारे यहाँ ब्रह्मसूत्र की चर्चाएँ बहुत परम्परागों से ही है और ऋषि–मुनियों ने उसका निर्णय दिया है और वह निर्णय क्या हैं कि "ब्रह्मणप्रचेहः लोका सूत्रा" मानो वह ब्रह्मसूत्र है जो प्रकृति के कण–कण में ओत–प्रोत है और प्रकृति को हमारे यहाँ देवी सूत्रों में परिणित किया गया है।

देवी कहते हैं जो देती रहती है। परन्तु संसार में देती कौन है? इसके वैदिक साहित्य में नाना पर्यायवाची शब्द आते रहते हें। देवी नाम इस माता वसुन्धरा को कहते हैं। जिसको पृथ्वी कहते हैं। बेटा! मानव जब संसार में आता है तो माता के गर्भस्थल में आकर रहता है। माता के गर्भस्थल में बिन्दु प्रवेश हुआ और वहाँ तपायमान रहता है। मैंने इससे पूर्वकाल में कहा अखण्ड अग्नि है जो संसार को तपा रही है। वह अग्नि माता के गर्भस्थल में हम जैसे पुत्रों की तपाती रहती है। मानो इस संसार को तपाती रहती है। वह तपायमान बन करके अखण्ड अग्नि को ले करके इस संसार के उज्ज्वलत्व में परिणित होता रहता है।

आज मैं उस क्षेत्र में ले जाना चाहता हूँ जहाँ माता वसुन्धरा की प्रत्येक मानव याचना करता रहता वसुन्धरा का अभिप्राय यह है कि जिसके गर्भ में हम वशीभूत रहते हैं, जिसके गर्भ में हम ओत–प्रोत रहते हैं उस माता को वसुन्धरा कहते हैं क्योंकि वैदिक साहित्य में आता है "वसुन्धरा वृतम् ब्रीही वृतः देवम् पृथ्वी वसस्तम् ब्रह्मे व्यापकः" वेद का ऋषि यह कहता है कि माता वसुन्धरा के गर्भ से जब मानव पृथक होता है तो माता पृथ्वी की गोद में आ जाता है। यह पृथ्वी माता कैसी ममत्व है, यह कैसी देवी है जिसके पूजन करने के लिए मैं बहुत अपने विचार–विनिमय देता रहता हूँ कि हम देवी की पूजा में सदैव परिणित होते रहें। यह माँ पृथ्वी कहलाती है। नाना प्रकार के खनिज पदार्थों को प्रदान करती रहती है, उन नाना खनिज और खाद्य पदार्थों को पान करके हमारा जीवन सुसज्जित होता है अथवा हमारा जीवन महान बनता रहता है।हे माँ! तू हमें अपने में धारण करने वाली है अपने में ही तू हमें पिरोने वाली है। इस पृथ्वी को वैदिक साहित्य में वसुन्धरा कहते हैं। वसुन्धरा का अभिप्राय कि जिसमें हम वशीभूत रहते हैं, हम बसते हैं। उस माता का नाम वसुन्धरा कहा गया है। वसुन्धरा सूर्य की नाना किरणों को भी कहा जाता है जो नाना प्रकार के मानव को तेजोमयी बनाती हुई तेजसत्व बनाती है। "विष्णुशचम रेतश्चम् दधश्चम् व्यापे" देखो, यह वैदिक सूत्रो में आता रहता है कि हम उसको गतिचम् स्वीकार करते हैं, गति देने वाली है। नाना प्रकार के अमृत को बहाने वाली है वह अमृत बहा देती है। वैदिक सूत्रों में अमृत को बहाने वाली को ममतव को माता कहते हैं।

मेरे पुत्रो! आज मैं तुम्हें विशेष चर्चा प्रकट करना नहीं चाहता हूँ। मैने बहुत पुरातन काल में निर्णय देते हुए कहा कि सन्निधान मात्र से यह ब्रह्माण्ड गति कर रहा है। यह प्रकृति गति कर रही है, यह संसार गतिशील हो रहा है। जहाँ मैं तुम्हें वेदों की वार्ता प्रकट कर रहा हूँ, वहाँ मैं तुम्हें ऐसे क्षेत्र में ले जाना चाहता हूँ जहाँ दो सम्पदा मानव के समीप आती रहती हैं। एक देवी सम्पदा है और दैविक सम्पदा है। देवी सम्पदा क्या है? जो मानव आत्म चिन्तन करता है, जो अपनी आभा को संकल्पवादी बना देता है। मुझे वह काल स्मरण है पुत्रो! जिस काल में ऋषि मुनि यह विचारते रहते थे कि जब यह आत्मा इस शरीर को त्यागे तो उस समय हमारा जीवन उत्तरायण में होना चाहिए और सूर्य भी उत्तरायण में होना चाहिए। तो मेरे पुत्रो! आज मैं तुम्हें ऐसे क्षेत्र में ले जा रहा हूँ जहाँ पुत्री प्रश्न कर रही है और पितर उनका उत्तर दे रहे हैं।

मुनिवरो! महाभारत का काल समाप्त होने जा रहा था। जब युद्ध समाप्त हो गया, संग्राम शांत हो गया तो महारानी द्रोपदी पितामह भीष्म के चरणों में ओत–प्रोत हो गई। पितामह भीष्म वाणों की शैय्या पर विराजमान हैं। उस समय महारानी द्रोपदी ने यह कहा हे भगवन! मेरी इच्छा ऐसी कर रही है कि आपके लिए सक सुन्दर आसन होना चाहिए जिससे इन बाणों को शरीर से दूर करके एक विश्राम स्थल होना चाहिए उस समय देवव्रत कहते हैं हे पुत्री! मेरे आसन से रक्त संचारित हो रहा है परन्तु जितना भी रक्त मेरे शरीर से जाता है उतना ही मेरा जीवन उत्तरायण को प्राप्त हो रहा है। उन्होंने कहा जैसी भगवन्! आपकी इच्छा महाराज युधिष्ठिर, अर्जुन और महारानी द्रोपदी सर्वत्र उनके चरणों को छूते रहते और उनसे प्रश्न करते रहते परन्तु उन्होंने एक ही वाक्य कहा कि एक माह में दो पक्ष होते हैं। आज के वेद पाठ में भी यह मन्त्र आ रहा था 'दक्षिणाम् ब्रह्मा ऊत्तरायणम् ब्री वृयम् ब्रभेताः अश्रुता।' मानव का जीवन उत्तरायण में होना चाहिए जैसे एक माह में दो पक्ष होते हैं। एक का कृष्ण पक्ष और एक शुक्ल पक्ष कहते हैं। एक अन्धकार का पक्ष होता है और एक प्रकाश का पक्ष होता है।

देखो जिसे हम कृष्ण पक्ष कहते हैं वह अन्धकार का पक्ष है और जिसे हम शुक्ल कहते हैं वह प्रकाश का है अमावस से लेकर के पूर्णिमा तक का जो पक्ष है वह तो हमारे यहाँ शुक्ल कहा जाता है और पूर्णिमा से लेकर के अमावस तक का जो मध्य काल है उसको हमारे यहाँ कृष्ण पक्ष कहा जाता है। तो कृष्ण और शुक्ल दोनों पक्ष हमारे जीवन में होते हैं। इसका भाव यह है कि **हे मानव! तेरे द्वारा संसार की सम्पदा आ जाए, ज्ञान आ जाये तो तुझे अभिमान नहीं होना चाहिए** क्योंकि अभिमान अनधकार का प्रतीक माना गया है। यदि तेरे द्वारा अन्धकार आ जाये तो निराशा को प्राप्त न हो क्योंकि निराशा तेरे मृतयु का सूचक कहलाया गया है। इसलिए तुम्हारे में अभिमान और निराशा के दोनों ही पक्ष नहीं आने चाहिए। क्योंकि दोनों पक्ष ही तुझे अधोगति को ले जाने वाले हैं।

तो मेरे पुत्रो! हमारे यहाँ एक माह के दो चक्रों में यह संसार चक्रित हो रहा है। इस मानव की आयु यह माता के गर्भ में आता है इन्हीं माह के दानों पक्षों के चक्रों में वह पूर्णिमा को प्राप्त हो करके गर्भ से पृथक हो जाता है। इन्हीं दो पक्षों में गति करते हुए मानव की आयु समाप्त हो जाती है। परन्तु इसमें छः–छः माह के दो पक्ष होते हैं, एक को उत्तरायण कहते हैं और एक का दक्षिणायन कहते हैं।

तो उत्तरायण किसे कहते हैं? जब सूर्य उत्तरायण होता है। दक्षिणायन किसे कहते हैं? जब सूर्य दक्षिणायन होता है। तो दक्षिणायन में शीतलता होती है, दक्षिणायन में अन्धकार विशेष होता है और उत्तरायण में प्रकाश होता है, उत्तरायण में जीवन होता है। तो छः–छः माह के यह दो पक्ष होते हैं, इन्हीं पक्षों में मानव अपने जीवन को व्यतीत करता रहता है। समय समाप्त हो जाता है। एक समय वह आता है कि यह जो संसार दृष्टिपात आ रहा है यह भी नहीं रह पाता। प्रलयकाल हो जाता है, अन्धकार छा जाता है। इसीलिए हमारे ऋषि–मुनियों ने बहुत अनुसन्धान किया है और विचार–विनिमय किया कि हमारा जीवन उत्तरायण में होना चाहिए, हम अपना जीवन दक्षिणायन में ले जाना नहीं चाहते। यह तो मैंने कुछ बाह्य जगत की चर्चाएँ कीं और बाह्य जगत में जो उत्तरायण और दक्षिणायण हो जाता है उसकी विवचेना हमारे यहाँ बहुत कुछ है। मैंने बहुत पुरातन काल में कहा कि अमावस से ले करके, प्रतिपदा से ले करके पूर्णिमा तक चन्द्रमा अपनी षोडश कलाओं से युक्त हो जाता है, यह षोडश कलाओं वाला चन्द्रमा पूर्णिमा वाले दिवस अमृत को बिखेरता रहता है, अमृत को देता रहता है। पूर्णिमा के पश्चात द्वितीय पदा आती है, तृतीय आती है और एक समय अमावस आ आता है जब प्रकाश का एक अकुर भी नहीं रह पाता, वह प्रकाश से शून्य हो जाता है। तो यह दो पक्ष हैं हमारे यहाँ हे मानव! तेरी द्वितीय पदा, तृतीय पदा, चतुर्थ पदा से अन्धकार में

चला जाए, अज्ञान आ जाए तो तुझे निराशा नहीं होनी चाहिए। क्योंकि वह तेरी मृत्यु का प्रतीक माना गया है और यदि अमावस से ले करके द्वितीय पदा, चतुर्थ पदा प्रकाश का आता रहे, प्रकाश से मानो पूर्णिमा दिवस सौम का पान करने लगे तो तेरे में अभिमान नहीं आना चाहिए। क्योंकि वही अभिमान तुझे मृत्यु के क्षेत्र में ले जाएगी।

आजका विचार–विनिमय क्या कि आज मैं इन दो पक्षों की चर्चा कर रहा हूँ। उस समय महारानी द्रोपदी ने पितामह भीष्म से यह कहा था कि हे पितर! में यह जानना चाहती हूँ कि ब्रह्मचरस अस्तम् क्या ब्रह्मचर्य क्या है? उन्होंने कहा हे पुत्री! यह जो ब्रह्मचर्य है यह शब्द ब्रह्म को चरने से बना है कि कोई भी मानव ब्रह्म को चरना चाहता है तो वह वीर्यवान हो करके ब्रह्म की आभा को चर सकता है इसीलिए उसे ब्रह्मचरिष्यामि कहा गया है, उसे ब्रह्मचारी कहा जाता है। हमारे यहाँ ऋषि–मुनि प्राणायाम करते रहते हैं, मेरी प्यारी माताएँ प्राणायाम करती रहती हैं, क्योंकि ब्रह्मचर्य के परमाणुओं की ऊर्ध्वागति बनाने के लिए। देवता उसी काल में बनता है जब उसकी ऊर्ध्वा में गति करने लगती है। ऊर्ध्वा में रमण करने लगती है। ऊँचा चिन्तन हो, प्राणायाम की गति ऊँची होनी चाहिए तो ऊर्ध्वा देववत्त को प्राप्त होता रहता है।मेरे प्यारे! उस समय महारानी द्रोपदी ने पुनः कहा कि भगवन् आपका जो वाक्य है वह तो ब्रह्मवेत्ताओं जैसा प्रतीत होता है परन्तु भगवन्! मैं जानना चाहती हूँ कि उस समय यह तुम्हारा ब्रह्मचरिष्यामि कहाँ गया था जब मानो सभा विद्यमान है और दुशाशन मुझे नग्न करना चाहता था? उस समय तुम्हारा ज्ञान और ब्रह्मज्ञान कहाँ गया था?

उस समय वह कहता है हे पुत्री! तुम यह वाक्य न उच्चारण करो क्योंकि उस समय जब सभा में तुम्हें नग्न किया जा रहा था मैं राष्ट्रीय बंधन में बन्धित हो रहा था और मेरे विचारों में मैंने जो राष्ट्रीय अन्न को ग्रहण किया था, पापाचार का जो अन्न मैंने ग्रहण किया था वह रक्त मेरी बुद्धि में रमण कर रहा था। उस रक्त ने मेरी बुद्धि को भ्रमित कर दिया था और मेरी बुद्धि कार्य नहीं कर पाई। इसलिए मैंने संकल्प किया है कि जब तक मेरा जीवन उत्तरायण नहीं हो पाएगा तब तक मुझे इस शरीर को त्यागना नहीं है। जिस समय मैं बाल्यकाल में परशुराम जी द्वारा अध्ययन करता था, वह मेरे आचार्य थे उन्होंने मुझे इन दोनों पक्षों की चर्चाएँ की थी। मैं उत्तरायण और दक्षिणायन दोनों पक्षों को जानता हूँ। उत्तरायण कहते हैं प्रकाश को और जिसे दक्षिणायन कहते हैं वह अन्धकार है। मैं अपने शरीर को अन्धकार में नहीं त्यागूँगा। अन्धकार किसे कहते हैं? हे पुत्री! तुम्हें प्रतीत है जिस समय यह राज्य संग्राम हो रहा था उस समय मेरा यह शरीर वाणों की शैय्या पर स्थिर हो गया । वह मेरे जीवन का मानो दक्षिणायन पक्ष कहलाता था क्योंकि मेरे में अभिमान की मात्रा भी थी। मेरे में अशुद्ध प्रतिज्ञा भी थी। मेरे में से जो रक्त बह रहा है मानो मेरी अशुद्ध प्रतिज्ञाओं का भी हनन हो रहा है और मेरे जीवन में उत्तरायण आना प्रारम्भ हुआ है। उत्तरायण शनैः शनैः आ रहा है। समय आएगा जब मेरा जीवन प्रकाश में आ जायेगा। प्रकाश में मैं अपने इस आत्मा, उदान प्राण और चित्त को ले करके जब यह शरीर त्यागा जाएगा तो मैं देवलोक को प्राप्त हो जाऊँगा, देवताओं के लोक में प्रवेश कर जाऊँगा। महारानी द्रोपदी इन वाक्यों को श्रवण करके शांत हो गई और कहा, धन्य है पितर! आपका जीवन तो धन्य है, आपके जीवन में पितरता आई है और वह मुझे बहुत प्रभावित कर रही है, भगवन्! अब हमारे लिए कोई उपदेश दीजिए। जिससे हम अपने जीवन को ऊँचा बनाएँ उन्होंने कहा, हे पुत्रो! तुम्हारे लिए एक ही उपदेश है कि तुम भी अपने जीवन को उत्तरायण बना करके स्वेच्छा से शरीर को त्याग देना क्योंकि संसार में मुझे कोई सार प्रतीत नहीं हुआ है, मैंने अपने पिता से ले करके पौत्र तक इस संसार की आभा को दृष्टिपात किया है। मुझे कोई तथ्य प्रतीत नहीं हुआ है, केवल यह ही है कि मानव को देवता बनाना है, मानव को देवता बनना चाहिए।

मुनिवरो! देखो मैं कृष्ण–पक्ष और शुक्ल–पक्ष दोनों की विवेचना करने के लिए आया हूँ, वह विवेचना क्या है? मेरे प्यारे! जिसमें काम, क्रोध, मद, लोभ इत्यादि दैत्य मानव के जीवन में खिलवाड़ करते रहते हैं उस काल तक मानव का जीवन दक्षिणायन कहलाया जाता है और जिस काल में देवी–देवता बनने की प्रेरणा रहती है तो मेरे हृदय में देववत रहता है। तो मेरा जीवन दर्शनों से गुथा हुआ और विज्ञान से गुथा हुआ सा प्रतीत हो करके उस समय मेरा जीवन उत्तरायण में परिणित रहता है और वह जो उत्तरायण है वही मेरा आत्म–ज्ञान है, उसी आत्म–ज्ञान को प्राप्त होता हुआ मानव अपने शरीर को त्यागता रहता है।

मुझे स्मरण आता रहता है कि वह द्रोपदी से बोले तुम्हें यह प्रतीत है कि मदाल्सा जब अपने शरीर को त्यागने लगी तो माता मदाल्सा ने यह विचारा था कि मैं अपने गर्भस्थल से महान पुत्रों को जन्म देना चाहती हूँ। उन्होंने अपने गर्भस्थल में देवी सम्पदा का पूजन करके उन्हें आत्म–ज्ञान अपने गर्भस्थल में प्रवेश करा दिया था, लोरियों का उन्हें पान कराती और उन्हें ब्रह्म का उपदेश देती रहती। जब वह ब्रह्म का उपदेश पूर्ण हो गया तो पाँच वर्ष के पश्चात वह बालक ब्रह्मवेत्ता बन करके, माता के चरणों को छू करके गृह को त्याग रहे हैं, माता देवी सम्पदा का पूजन कर रही थी, ब्रह्मवेत्ता बन करके पुत्रों को ब्रह्मवेत्ता बना रही थी। मानो उसका यह हृदयग्राही बन गया था कि इस संसार में मुझे कोई तथ्य दृष्टिपात नहीं आ रहा है। मेरे गर्भस्थल से उत्पन्न होने वाला पुत्र ब्रह्मवेत्ता होना चाहिए, ब्रह्म की उड़ान उड़ने वाला हो और दर्शनों की उड़ान उड़ने वाला हो । और जब राजा ने यह कहा, देवत्वम! हे देवी! राष्ट्र का उद्धार कैसे होगा राष्ट्र कैसे महान, बनेगा तो वह कहती है, हे राजन! मैं एक सन्तान को जन्म दे करके उसके पश्चात मुझे सन्तान का अधिकार नहीं रहा है, न मैं सन्तान को ही जन्म दे सकूँगी।मेरे प्यारे! देखो यह चतुर्थ बालक राज्य वंश को प्राप्त हुआ, राजस्वी बन गया। वह माता का संकल्प था कि मुझे अपने जीवन को उत्तरायण बनाना है। गायत्री माता की गोद में प्रवेश कर गया और गायत्री छन्दों के सहित पठन–पाठन करते हैं, दर्शनों का अध्ययन रहता। जब सूक्ष्म बालक बारह वर्ष का हो गया तो राजा को अपने समीप विद्यमान करके बोली राजन्! अब मैं अपने शरीर को त्याग रही हूँ। वह बोले हे देवी! तुम इस शरीर को क्यों त्याग रही हो। उन्होंने कहा कि मैं इसलिए त्याग रही हूँ क्योंकि मेरे जीवन का उत्तरायण आ गया है। मेरे जीवन में दक्षिणायन नहीं हो रहा है। आपको प्रतीत है मैंने बारह वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन किया है। मैंने ब्रह्म में अपने को लीन होने के लिए ब्रह्मचरिष्यामी मानो ब्रह्म आभा को प्राप्त किया है अब मैं अपने शरीर को त्यागना चाहती हूँ। राजा ने कहा हे देवी! मेरा यह गृह शून्यता को प्राप्त हो जाएगा। उन्होंने कहा हे, भगवन्! यह तो मेरी प्रतीज्ञा थी। मैंने जब आचार्य से और आप से यह कहा था कि यदि पाँच वर्ष तक मेरे संरक्षण में बालक का पालन–पोषण, शिक्षा होनी चाहिए परन्तु आपने वाक्य को स्वीकार नहीं किया। मैंने बारह वर्ष तक अपने जीवन को उत्तरायण बना करके अपने शरीर को त्यागना चाहती हूँ।

मुनिवरो! उस समय पितामह भीष्म कहते हैं देवी! उस माता मदालसा ने अपने शरीर का गायत्री के गोद में प्रवेश करके और प्राणायाम किया और प्राण की गति के द्वारा उदान आत्मा और चित्त तीनों का समन्वय करके इस शरीर को उदान प्राण के द्वारा आत्मा में त्याग दिया। त्याग देने के पश्चात वह द्यु लोक को प्राप्त हो गई। उसे मोक्ष की प्राप्ति हो गई। इसी प्रकार मानव का जीवन उत्तरायण में होना चाहिए। उत्तरायण किसे कहते हैं? आत्म ज्ञान का जब प्रकाश हो जाता है, आत्मा का प्रकाश हो जाता है। जब उसे ब्रह्म की आभा प्राप्त हो जाती है तो वह देवी सम्पदावादी बन जाता है। हे माँ तू वैदिक सम्पदावादी बन करके शरीर को त्याग देती है और अपने गर्भ में बालक को महान बना देती है। तू कैसी पवित्र देवी है, तू कैसी महान है। मेरे प्यारे! विचार भी महान पवित्रवत होने चाहिए। तो उस समय पितामह भीष्म कहते हैं देवी! जो मानव अपने जीवन को उत्तरायण बना लेता है, महान बना लेता है उसी को नाना प्रकार के लोक प्राप्त होते हैं। वह देवव्रत लोकों को प्राप्त होता रहता है।

तो आज का हमारा यह विचार क्या कह रहा है कि हम परमपिता की आराधना करते हुए अपने जीवन को महान बनाते हुए माता वसुन्धरा के गोद में प्रवेश कराते रहें। हमारे जीवन में श्रद्धामयी होनी चाहिए कयोंकि श्रद्धा ही तो देवी सम्पदा लाती है। श्रद्धा ही तो अखण्ड देवी बन करके मानव के जीवन को सुन्दर बना देती है। मानव को पवित्र बना देती है। मननशील बना देती है, सरस्वती

देव पूजा

जब मानव के कंठ में विराजमान होती है तो मानव का कंठ सुशोभित हो जाता है। हे माँ! तेरा जो कंठ है वह नाना आभूषणों से सुशोभित नहीं होता। कंठ सुशोभित होता है विद्या रूपी आभूषण जब मानव के समीप होते हैं और वह जो विद्या रूपी आभूषण है वही मानव को सुशोभित बना देता है। मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जब चक्राणी गार्गी और याज्ञवल्क्य मुनि महाराज दोनों का शास्त्रार्थ होता था। वह काल भी स्मरण आता रहता है जब चाक्राणी ब्रह्मचर्य काल में थी और सिंह राज उनके चरणों को छू कर नमस्कार करते वही तो देवी सम्पदा है जो हिंसक प्राणी भी देवता बन करके उनके चरणों में ओत–प्रोत हो जाते हैं।

मानव का कंठ पवित्र होना चाहिए। प्रत्येक मानव को अमृत को पान करना है। पितामह भीष्म यह कहा करते थे देवी! संसार मे अमृत को पान करने का नाम ही ज्ञान है, विवेक है। अमृत क्या है? जिसको जिज्ञासु पान करते हैं देवता बन जाते हैं। उसी अमृत को तो हमें पान करना है। तो पितामह भीष्म अपने जीवन को उत्तरायण में ले गये, प्रकाश में ले गये, ज्ञान में ले गये। ज्ञान क्या है, आत्मा क्या है, प्रकृति क्या है, ब्रह्म क्या है, तीनों के स्वरूपों को पान करके, एक सूत्र में पिरो करके वह अमरावती को प्राप्त होते रहे। मुनिवरो! वही तो प्रकाश है जो यह जानता है कि मेरा आत्मा क्या है, यह प्रकृति क्या, ब्रह्म क्या है जो सूत्र बन करके ब्रह्माण्ड में ओत–प्रोत है। तो सूत्र में अपने को पिरोने वाले बनें। तो जो सूत्र में पिरोने वाला अवृत है, मानो चेतना है उस चेतना को अपने में धारण करें, सूत्र में पिरो करके हमें आत्म–ज्ञान हो जाता है, प्रकाश आ जाता है, उसी प्रकाश के क्षेत्र में प्रत्येक मानव रमण करता रहता है। प्रातःकालीन में सूर्य उदय होता है सायंकाल को अस्त हो जाता है। वह सूर्य की नाना प्रकार की किरणें मानव के जीवन को प्रभावित करती रहती हैं, कहीं कांती बन करके आती हैं, कहीं रेनकेतु बन करके आती हैं, कहीं कौशल्या बन करके आती हैं, कहीं सुम्भनी बन करके आती हैं, कहीं केशव बन करके आती हैं, कहीं वह कात्यानी बन करके आती हैं। नाना प्रकार की किरणें संसार को प्रभावित करती रहती हैं। वह अपने–अपने तेज को ले करके आती हैं। जब प्रातःकाल ऊषा की किरण आती है, वह ज्ञान और अमृत को बिखेरती चली आती है। उसके पश्चात कान्ती तेजोमयी कहते हैं। उसके पश्चात जो नाना किरणें आती हैं, कोई मानो स्वर्ण को तपा रही है, कोई दर्शनों को तपा रही है, कोई जल को तपा रही है, कोई मानव में ओज उत्पन्न कर रही है, कोई मानव की बुद्धि का निर्माण कर रही है, कोई माता के गर्भ में प्रवेश करके बालक के जीवन को ऊँचा बना रही है। बेटा! कोई किरण आती है जो विष को अपने में शोषण कर रही है, कोई किरण आती है विष का विभाजन करती रहती है तो उसके नाना स्वरूप माने गए हैं। आजका विचार क्या कि हम अपनी उस महान प्रकृति की उस देवी की उपासना करते रहें जो सूर्य की आभा में तेजोमयी बन करके प्रकाश को देती रहती है, उज्ज्वल स्वरूप प्रकट करती रहती है।

पितामह भीष्म ने यह कहा, हे द्रोपदी! यह जो संसार है यह देवी सम्पदा कहलाता है। वह उपदेश देते रहे, यह कहा करते थे कि संसार में सबसे महान जो आश्चर्य है वह मृत्यु कहलाता है। मानो मानव की मृत्यु आती है और उसी से मानव प्रयास करता रहता है कि मेरी मृत्यु नहीं आनी चाहिए। यह सबसे महान आश्चर्य कहलाता हे पुत्री! इसीलिए मानव को मृत्यु का भय नहीं होना चाहिए। मृत्यु से जिवय होने का हमें प्रयास करना चाहिए। पितामह भीष्म जी यह कहा करते थे, **मृत्यु को विजय वह प्राणी करता है जिस मानव को आत्म–ज्ञान हो जाता है,** जो आत्मा को जान लेता है कि आत्मा तो अखण्ड रहने वाला है। प्रकृति के परमाणुओं से शरीर का निर्माण हुआ है इसका भी विनाश नहीं होता है ब्रह्म–सूत्र में मानव पिरोया हुआ है तो यह शरीर का तो रूपान्तर होना है। ऋषियों ने इसे विनाश भी नहीं माना है। आत्मवेत्ताओं ने कहा, इसका रूपान्तर हो जाना है। स्थूल से परमाणु हो जाना है और वह परमाणु भी नष्ट नहीं होता है। आत्मा नष्ट नहीं होता तो मानव की मृत्यु का प्रश्न ही नहीं होता कि मृत्यु भी आनी है अथवा नहीं। तो मेरे प्यारे! मृत्युञ्जय बनना है, इस आत्म–ज्ञान के साथ ही मानव को मृत्यु से पार होना है। ज्ञान से मानव मृत्यु से पार होता है। तो इसीलिए हे मृत्यु! तू देवी है। हे मृत्यु! तू संसार को न रुला। बेटा! मृत्यु क्या है? मृत्यु अज्ञान है। अरे मानव! तू अज्ञान को त्याग और तेरी मृत्यु आ ही नहीं सकती है। यह जो देवी ब्रह्म–पूजन है यह क्या है? देवी का पूजन है कि अज्ञान को हम त्यागें और देवी सम्पदा हममें प्रवेश कर जाए, ब्रह्म–सूत्र में हम पिरोए हुए हैं तो इसीलिए मानव का जीवन ब्रह्म–सूत्र में पिरोया हुआ होना चाहिए।

भीष्म पितामह द्वारा शरीर त्याग

मुनिवरो! पितामह भीष्म जी इस वाक्य को प्रकट कर रहे थे, तो देखो पूर्ण छः मास हो गए वह उत्तरायण आ गया, प्रकाश का ज्ञान आ गया। **देखो पितामह भीष्म एक वर्ष चार दिवस तक वाणों की शैय्या पर स्थिर रहे,** वह क्यों रहे? क्योंकि उत्तरायण का समय का यह भाव नहीं है कि सूर्य उत्तरायण में चला गया है या दक्षिणायन में आ गया है। नहीं, पितामह भीष्म की यह प्रतिज्ञा थी कि जब तक मुझे आत्म–बोध नहीं हो जाएगा तब तक मैं अपने इस शरीर को इच्छा से नहीं त्यागूँगा। मेरे प्यारे! देखो एक वर्ष चार दिवस तक वह मृत्यु की शय्या पर रहे, वाणों की शय्या पर रहे। जब तक वह मृत्युञ्जय नहीं बने, आत्म–ज्ञान नहीं हो गया तब तक महारानी द्रोपदी उन्हें भोजन कराती रही। स्वयं कला–कौशल करती और परिश्रम करके उसके बदले जो अन्न आता वह पितामह को प्रदान करती रही। उसको पान करके उनके जीवन में उद्‌बुद्धता आ गई, प्रकाश आ गया। प्रकाश के आने पर क्योंकि जब वह अन्न को पान करती रहती थी तो गायत्री का जाप होता रहता, गायत्राणी के गर्भ में प्रवेश होती रहती। जिस समय भोजनालय को तपाती उस समय गायत्राणी छन्दों में और जब वह परिश्रम करती तब भी उसकी रूचि ब्रह्म में लीन रहती। ऐसी जो माता होती हैं वह अपने पुत्रों को, अपने पितरों को स्वर्ग की प्राप्ति करा देती हैं। देखो जीवन उत्तरायण में चला गया। गायत्राणी छन्दों का पठन–पाठन किया, प्राणायाम किया और अपने शरीर को त्याग दिया, ब्रह्म–लोक को प्राप्त हो गए।

तो मुनिवरो! उत्तरायण का अभिप्राय ज्ञान होना चाहिए, प्रकाश होना चाहिए। बाहरीय जगत में भी सूर्य दो प्रकार का प्रकाश देता है। एक दक्षिणायन और एक उत्तरायण। एक माह के भी दो पक्ष होते हैं, शुक्ल और कृष्ण हैं। इन दोनों का भाव यह कि अज्ञान को त्याग दिया जाए और ज्ञान और प्रकाश में आना यह हमारा जीवन है। यह है बेटा! आजका वाक्य! मुझे समय मिलेगा विशेष चर्चाएँ कल प्रकट करूँगा। आजका वाक्य समाप्त। अब वेदों का पाठ होगा। स्थानः माता जी का मन्दिर माडल टाऊन, अमृतसर समय : सायं 4 बजे

९. राम बनवास 23–04–1977

जीते रहो!

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भाँति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुण–गान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद–मन्त्रों का पठन–पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेद–वाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेद–वाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की महिमा का वर्णन किया जाता है। बेटा! उस प्रभु की महिमा एक–एक कण–कण में व्याप्त रही है। हमारे आचार्यों ने, बहुत पुरातन काल के ऋषि–मुनियों ने एक–एक वेद मन्त्र के ऊपर बहुत चिंतन किया। चिंतन करने के पश्चात उस प्रकृति के पमाणुवाद पर जब दृष्टिपात किया और परमाणु को बेटा! उन्होंने विघटित किया। जब परमाणु का विभाजन हुआ, उन्होंने अपनी योग दृष्टि से उस एक परमाणु में मानो सर्व ब्रह्माण्ड की प्रतिभा निहित देखी। **तो वेद के ऋषि यही तो कहते हैं कि एक–एक परमाणु में सर्व ब्रह्माण्ड ओत–प्रोत हो रहा है।** तो मुनिवरो! एक–एक परमाणु में सर्वत्र ब्रह्माण्ड, सर्वत्र लोक–लोकान्तरों की

प्रतिभा चित्रित हो रही है। इससे हमें यह दृष्टिपात होता है ,कि परमात्मा का जो यह ब्रह्माण्ड है वह इतना अनुपम माना गया है इसलिए इसके ऊपर बहुत मनन किया जाता है। ऋषि–मुनियों ने बहुत मनन किया।

मुझे वह काल स्मरण आता रहता है पुत्रो! जब ऋषि–मुनि अपने आसनों पर विराजमान हो करके अपने नाना प्रकार की जन्मों की वार्ता को विचारने लगते थे। नाना प्रकार के जन्मों से मानव को कुछ शिक्षाएँ प्राप्त होती रहती हैं। मानो वायु मण्डल में जो उनके कई जन्मों के चित्र विराजमान रहते थे, यंत्रों के द्वारा उन शब्दों को ग्रहण करते और उन शब्दों के साथ में जो चित्र आते उनको चित्रावलियों में बेटा! दृष्टिपात करते रहते थे। वह कितना विज्ञानमय युग कहलाय गया। आध्यात्मिकवाद की दृष्टि से, भौतिकवाद की दृष्टि से वह कितना महत्वपूर्ण माना जाता है। वैशम्पायन ऋषि महाराज ने ऋषि विभाण्डक मुनि महाराज से यही कहा था कि हमारे यहाँ जो नाना प्रकार की चित्रावलियाँ हमें प्राप्त हुई हैं, उन चित्रावलियों में, मैं अपने सात जन्मों के चित्रों को दृष्टिपात करता रहता हूँ। तो बेटा! विज्ञान कितना अनुपम है? वैदिक साहित्य में जब हम एक–एक वेद–मन्त्र के ऊपर अध्ययन करने के लिए तत्पर होते हैं तो नाना रूपों में वायुमण्डल को प्राप्त करते रहते हैं। आज मैं तुम्हें विज्ञान के युग में नहीं ले जाना चाहता हूँ।

आज मैं तुम्हें ऐसे क्षेत्र में ले जाना चाहता हूँ जहाँ प्रत्येक मानव तपश्चर बनता रहता है, तप की महिमा का वर्णन आता रहता है। मानव बिना तपस्या के कदापि भी ऊँचा नहीं बनता। मैंने तप के सम्बन्ध में बहुत ऊँची–ऊँची उड़ान पुरातन काल में प्रकट की थी। मेरी पुत्री तपती रहती है परन्तु तपने के पश्चात ममतामयी की आभा उत्पन्न हो जाती है। बेटा! जब तक तपस्या नहीं होती तब तक मानव माता ममतामयी को नहीं प्राप्त होती। मानो "ब्रह्मचारिष्यामि" वह ब्रह्म के आँगन को प्राप्त नहीं हो पाता जब तक वह तपश्चर जीवन को प्राप्त नहीं होता। मुझे बेटा! वह काल स्मरण आता रहता है जब इन्द्र देवताओं के धिराज तपते रहते थे, मानो 101 वर्ष का तप कर रहे हैं। बेटा! भयंकर वनों में जा करके ऋषिवर तप करते थे। क्योंकि तपस्या एवं ज्ञान भी वन है और जिस स्थली पर विद्यमान है वह भी वन है। चिन्तन करना भी वन है और उसकी तरंगें भी वन ही मानी जाती है। अभिप्राय क्या कि जिसका कोई मानव को ओर–छोर प्राप्त नहीं होता उसको वन कहते हैं। तो मुनिवरो! देखो निर्जन वनों में मानव जब अपना भाषित रहता है तो वह अपनी–अपनी आभा में निहित होता रहता है, चिन्तन करता रहता है, मनन करता रहता है, ऊँची–ऊँची उड़ानें उड़ता रहता है। उन उड़ानों में मुनिवरो! देखो मानव तपश्चर में परिणत हो जाता है। आज मैं तुम्हें विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ, वेद के कुछ आशय को प्रकट करने के लिए आया हूँ।.बेटा! सूर्य प्रातःकाल से सायं काल तक तपश्चर रहता है, तपता ही रहता है, संसार को जीवन देता रहता है, प्रकाश में मानव को ले जाता है, अन्धकार को दूर कर देता है। तो मुनिवरो! वह कितना तेजोमय तप रहा है। तेजोमय तपस्वी बनता हुआ वह तेज देता रहता है, उसी तेज के द्वारा मुनिवरो! यह संसार तेजस्वी बनता है। तो हमें भी प्रत्येक प्राणीमात्र को भी तपना चाहिए और तप करते हुए अपने तप से द्वितीय को ऊँचा बनाना, तपस्वी बनाना यह उसका कर्तव्य कहलाया गया है। वह उसी तपस्या के द्वारा संसार को, अपने मानवत्व को ऊँचा बनाता रहता है। मेरे प्यारे! मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जिस काल में चक्राणी गार्गी, महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज से प्रश्न करती है कि महाराज! मेरी भुजाओं में एक तरकस है और तरकस में मानो बाण उसमें पिरोया हुआ है। मेरा लक्ष्य क्या होना चाहिए? तो उस समय याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ब्रह्मवादिनी विदुषी से कहते हैं, हे देवी! तुम्हारी भुजाओं में जो तरकस है उस तरकस में जो बाण चढ़ा हुआ है, तुम्हारा जो लक्ष्य है वह ब्रह्म है, उस ब्रह्म को तुम्हें पान करना है, ब्रह्म के द्वार पर जाना है। तो मुनिवरो! देखो ब्रह्मवादिनी कहती हे प्रभु! धन्य है। तो मुनिवरो! देखो हमारा जीवन इस प्रकार का होना चाहिए, त्याग–तपस्या में हमारा लक्ष्य , ब्रह्म रहना चाहिए। क्योंकि ब्रह्म की सृष्टि में न तो कोई ज्ञानी है न कोई ऊर्ध्व है, केवल एक सामान्यता में प्रत्येक प्राणी रहता है। क्योंकि कोई भी मानव उस प्रभु के क्षेत्र में जाकर यह विचारता रहता है क्योंकि अभिमान तो इस संसार में मृत्यु बन जाता है। निरभिमान मानव को प्रिय बना देता है, उसमें एक रसता आ जाती है। तो इसीलिए मुनिवरो! हमें एक रस को प्राप्त होना है।

वन गमन

आओ मेरे प्यारे! मैं एक वाक्य तुम्हें प्रकट कराने जा रहा हूँ, तुम्हें त्रेता के काल में ले जाना चाहता हूँ। त्रेता के काल में मेरे प्यारे! राजा दशरथ एक समय महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज के द्वार पर पहुँचे। महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ने कहा, कहो राजन्! तुम्हारा आगमन क्यों हुआ? राजा ने कहा, प्रभु! मैं इसलिए आया हूँ कि मेरा चौथापन आ गया है, मैं अपने जयेष्ठ पुत्र को यह राष्ट्र अर्पित करना चाहता हूँ। इसका कोई विचार और चिन्तन करने के पश्चात निर्णय दीजिए। मेरे प्यारे! उससे पूर्व एक सभा हो गई थी अयोध्या में, उस सभा में यह निर्णय हो गया था कि राम को वनों में जाना है और आततायियों को नष्ट करना है, ऋषि–मुनियों का यह चिन्तन हो गया था, उनकी सभाओं में यह निर्णय हो गया था। परन्तु जब राजा दशरथ ने ऐसा कहा तो ऋषि कहते हैं, हम इसके ऊपर विचार–विनिमय करेंगे और कल तुम्हें इसका उत्तर दे सकेंगे।राजा अपने राष्ट्र में पहुँचे। ऋषि ने अपने कुछ ब्रह्मचारियों को एकत्रित किया और माता अरुन्धति को एकत्रित किया। माता अरुन्धति के साथ और भी नाना विदुषी देवियाँ 'देवियाँ विद्यमान थीं। ऋषि ने कहा, 'देवियो! मेरी इच्छा ऐसी हे कि राम का राजतिलक होना चाहिए, क्योंकि राजा दशरथ की यह कामना बन गई है। उन्होंने कहा, भगवन्! यह तो वाक्य प्रिय है। परन्तु यह तो विचारों कि तुम्हारे राज्य में सभाएँ तो एक स्थली में हैं और ब्रह्म सभा एक स्थली में है। ब्रह्मवेत्ताओं का निर्णय ऊँचा है या राजसभाओं का निर्णय ऊँचा है? उन्होंने कहा कि मेरे विचार में तो ब्रह्मवेत्ताओं का निर्णय ऊँचा रहता है, क्योंकि इनके तपे हुए विचार होते हैं, अनुभव किया हुआ होता है। विचार तरंगों को अच्छी प्रकार जानते हैं, समाज की प्रतिभा को जानते हैं, समाज को वह ऊँचा बनाना चाहते हैं। तो इसलिए ब्रह्मवेत्ताओं का निर्णय जब ऐसा है तो राम को वन में ही जाना चाहिए। तो मेरे पुत्रो! ऋषि ने कहा, अब क्या करना चाहिए? उन्होंने कहा, कोई युक्ति तुम्हें ही विचारनी है।

मुनिवरो! देखो मुझे ऐसा कुछ प्रतीत है कि ऋषि ने अपने ब्रह्मचारियों की सभा में, विदुषियों की विचारशाला में अपना मन्तव्य प्रकट किया कि राम को राजतिलक हो जाना चाहिए। परन्तु इसके उपाय में जब नाना ऋषियों को यह प्रतीत हुआ तो मुनिवरो! उन्होंने अपनी कुछ सभाएँ एकत्रित कीं, वह गुप्तचर रूपों से कीं। उन्होंने अगले दिवस ही यह घोषणा कर दी राजस्थली कि राम को राजतिलक होना चाहिए। मुनिवरो! देखो जब राजतिलक की घोषणा की तो तिलक होने ही वाला था। अगला दिवस हुआ, अयोध्या में नाना प्रकार के आनन्द आ रहे थे, मग्नता हो रही है। मुनिवरो! राजगृहों में गान गाये जा रहे हैं, याग हो रहे हैं, नाना प्रकार के आनन्द हो रहे हैं सर्वत्र राष्ट्र में। मेरे प्यारे! देखो वही रात्रि थी, उसी रात्रि में अभ्रेतु ऋषि महाराज थे जो वशिष्ठ मुनि महाराज के शिष्य कहलाते थे। अभ्रेतु ऋषि मन्थरा के द्वार पर पहुँचे और मन्थरा से कहा, हे मन्थरा! ऋषि ने कुछ कहा है यह पत्र लीजिए। उन्होंने लेखनी उनकी अर्पित की और वहाँ से अपना गमन किया और मन्थरा ने उसको श्रवण किया और वही पत्रिका कैकेयी को प्रेषित कर दी। कैकेयी ने जब उस लेखनी को अपने में श्रवण किया तो वह राम के राजतिलक का विरोध करने लगी। जब विरोध करने लगी, मध्यरात्रि का समय था, मध्यरात्रि के काल में मुनिवरो! महर्षि वाल्मीकि का कथन है कि कैकेयी कोप भवन में विद्यमान हो गयी। जब राजा को यह प्रतीत हुआ कि कैकेयी तो शोक भवन में जा पहुँची है तो उस समय वे अपने आसन को त्याग करके शोक भवन में पहुँचे। मध्यरात्रि थी, उन्होंने कहा देवी! तुम्हारी क्या इच्छा है? उन्होने कहा कि प्रभु राम का वन होना चाहिए । उन्होंने कहा, देवी! तुम्हें यह क्या हो गया है? तुम राम से इतना स्नेह करती थी, तुम्हारी इतनी प्रीति थी। आज तुम राम को वन देना चाहती हो, तुम्हारी बुद्धि कहाँ चली गयी। उन्होंने कहा कि नहीं भगवन्! मेरी

ऐसी ही इच्छा है, यह मेरी आन्तरिक कामना है। उन्होंने कहा कि ऐसा उच्चारण करना तुम्हारे लिए शोभनीय नहीं है, क्योंकि तुम राम की ममतामयी माता हो। उन्होंने कहा कि जहाँ कर्तव्य की भावना आती है भगवन्! तो वहाँ ममता समाप्त हो जाती है। मेरी अन्तर्भावना यह है कि राम को वन में जाना चाहिए और मेरे पुत्र को व्रती होना चाहिए।

यह वाक्य क्यों कहा गया? क्योंकि राजा तथा ऋषि यह जानते थे कि बिना घोषणा के राजतिलक होने जा रहा है। भरत को यह प्रतीत नहीं था कि राम को आज राजतिलक होने वाला है, न शत्रुघ्न को यह प्रतीत था, लक्ष्मण को भी इतना विदित नहीं था, उन्हें इतना प्रतीत तो हो गया था, क्योंकि वह महर्षि सुधन्वाकेतु के यहाँ धनुर्विद्या को प्राप्त करने गये थें मानो हिमालय की कन्दराओं में भरत और शत्रुघ्न दोनों दर्शनों का अध्ययन और कुछ विज्ञान का अध्ययन और कुछ अस्त्रों–शस्त्रों की विद्या का अध्ययन कर रहे थे। क्योंकि जब कोई इस प्रकार का कार्य होता है तो अपने कुटुम्ब, अपने सहपाठी मानो अपना जो भी सम्बन्धित होता है उसको यह प्रतीत होता है कि हमारे गृह, में राज्य में राज्याभिषक होने वाला है। तो भरत और शत्रुघ्न को कोई प्रतीत नहीं था। दशरथ से केकैयी ने कहा कि महाराज बिना सूचना के आप राज्यस्थली प्रदान कर रहे हैं तो मेरी इच्छा यह है कि आप राम को वन दे दीजिए। मुनिवरो! दशरथ व्याकुल होने लगे। पुत्र का ममत्व उनके हृदय में एक स्थली बन गया था। उन्होंने कहा, देवी! तुम ऐसा न करो। वेद का ऋषि कहता है, मन्त्र कहता है कि "नीति में अनीति नहीं करनी चाहिए।" देखो आनन्द में शोकातुर नहीं होना चाहिए। भाव से अभाव को न उत्पन्न करो। जब ऐसा उन्होंने कहा, कैकेयी ने कहा, कदापि नहीं भगवन्! राज्याभिषेक नहीं होगा, वन होगा और चौदह वर्ष का वन होगा। जब उन्होंने यह कहा तो वे बोले कि आप ऐसा क्यों उच्चारण कर रही हैं? उन्होंने यह कहा तो वे बोले कि आप ऐसा क्यों उच्चारण कर रही हैं? उन्होंने कहा कि मेरे दो वचन हैं। जिस समय में कृष्णदित राजा के यहाँ तुम्हारा संग्राम हुआ था और कुबेर के यहाँ भी तुमने संग्राम के लिए अपनी घोषणा की थी उस समय रथ की धूरी ध्वस्त हो गयी थी उसके दो भाग हो गए थे मैंने अपनी भुजाओं की देखो अनिमा कूली मेरी दृष्टिपात हो रही है मैंने वह धूरी में परिणत कर दी थी। क्योंकि मेरा जो रक्त था वह क्षत्रिय था और क्षत्रियाणी का यह कर्तव्य है कि वह अपने पति के साथ युद्ध में, संग्राम में जाती है, जाती रही थी। मेरे दो वचन हैं। उन्हें प्रदान कीजिए। राजा रावण ने घ्राती में (अर्थात् नाक के नीचे) समुद्र के मध्य में पृथ्वी का एक भाग था वह ओत–प्रोत करा दिया था। तुम्हें यह प्रतीत है कि मैं और आप दोनों वाहन को लेकर के उस कृतिभा में पहुँचे और वहाँ से हम उस यन्त्र को लाए जिसमें वह कौशल्या यन्त्रों में ओत–प्रोत करा दी थी, जो राजा कौशल की कन्या थी। उस समय तुम्हारा संस्कार हुआ था, यह तुम्हें प्रतीत होगा। आज मेरे दो वचन हैं जो मुझे आपको देनें हैं, आज मुझे राम को वन देना है, राम को मुझे ऐश्वर्य नहीं देना है। जब इस प्रकार उन्होंने मध्यरात्रि में यह घोषणा की तो राजा मौन हो गए और मौन हो करके एकान्त स्थली पर विद्यमान हो गए।

यह सर्व वार्ता राम को प्रतीत हो गयी थी कि मेरी माता कैकेयी मुझे वन के लिए विवश कर रही है और मुझे वन जाना है। बेटा! राम तपे हुए थे। कुछ तो माता के गर्भस्थल में तपे, कुछ माता की लोरियों में तपे, कुछ आचार्य के गृह में तपे, कुछ मानो देखो विश्वामित्र के आश्रम में तपे हुए थे, कुछ भारद्वाज मुनि के द्वारा तपे थे। उन्होंने यह प्रतिज्ञा की थी वशिष्ठ के द्वारा, मैं ऋषि भारद्वाज मुनि के आश्रम में जब वह 'अहिल्याकृतिभा–यन्त्रों का निरीक्षण कर रहे थे अथवा निर्माण कर रहे थे उस समय वह पृथ्वी के गर्भ में यातायात बना रहे थे, उस समय यह प्रतिज्ञा की थी उन्होंने कि "मुझे महापुरुषों अस्त्रों–शस्त्रों से रक्षा करनी है, मुझे महापुरुषों की सेवा में रहना है।" ऐसा उनका वचन था, ऐसा मन्तव्य था। माता जब लोरियों का पान कराती रहती, कौशल्या जी यह कहती रहती थी, "हे बालक! हे राम! यदि तूने मेरे गर्भस्थल से जन्म पाया है तो तेरा कर्तव्य है कि तू महापुरुष बनना, तू महादेवत्व बनना, देवत्व को तुझे प्राप्त करना है, दैवी सम्पदा में जाना है, दैत्यों का हनन करना है, तुझे महापुरुषों की सेवा करनी है।" माता के जो हृदय के उद्‌गार थे, वे बालक के अन्तःकरण में ओत–प्रोत हो जाते हैं।

राम का हृदय मुनिवरो! तपा हुआ था, राम जन्म–जन्मान्तरों से महापुरुष होते चले आये थे। मेरे प्यारे! वह दिव्य आत्मा कहलाती थी। क्योंकि कुछ आत्माएँ ऐसी होती हैं इस संसार में जो प्रभु के नियन्त्रण में होती हैं, इन आत्माओं का मोक्ष नहीं होता अर्थात मोक्ष से पूर्व की स्थिति में आत्मा रहते हैं, इनमें व्यापकवाद होता है, जो कुछ इस संसार में आती हैं कोई राष्ट्र गृहों में आती हैं, कोई निर्धन गृहों में जन्म लेती हैं और अपना–अपना कर्तव्य पूर्ण करके वे वहाँ से चली जाती हैं, ऐसा वैदिक साहित्य में भी आता है, दर्शनकारों ने भी इसका वर्णन किया है परन्तु आज मैं दर्शनकारों के क्षेत्र में नहीं जा रहा हूँ। यह तुम्हें मैं त्रेता काल के समय की वार्ता प्रकट कर रहा हूँ। तो मुनिवरो! देखो राम का हृदय तपा हुआ था।

राम ने जब यह श्रवण किया कि माता कैकेयी की यह कामना है कि मुझे वन जाना है तो मुनिवरो! देखो मध्यरात्रि में वह भी शोक भवन में जा पहुँचे। शोक भवन में कैकेयी विद्यमान है। राम ने कैकेयी के चरणों को स्पर्श किया । कैकेयी ने कहा, धन्य हो पुत्र ! आज तुम मेरे द्वार पर आए हो, मेरी इचछा है कि तुम चौदह वर्ष के लिए वन चले जाओ। राम ने कहा, मेरी तो यह कामना रहती है मातेश्वरी कि मुझे माताओं की आज्ञा का पालन करना है, जिन माताओं के गर्भस्थल में मेरा जीवन पनपा है यदि मैं उन माताओं की आज्ञा का पालन नहीं करूँगा तो मेरे पुत्र होने का अस्तित्व ही क्या है? राम कहते हैं मातेश्वरी! तुम्हारा जो अन्तःकरण है उसमें कुछ और भावना है, बाह्य–जगत में कुछ और भावना है। मैं वन अवश्य चला जाऊँगा। मातेश्वरी! मानो तुम्हारे हृदय में जितनी प्रीति है, उस प्रीति को मैं जानता हूँ। परन्तु तुम्हारे समीप कोई ऐसी विवशता आ गयी है, जिससे तुम मुझे यह उच्चारण कर रही हो कि तुम वन चले जाओ, मैं बन जा रहा हूँ। माता के चरणों को स्पर्श किया, राजसी वस्त्रों को उन्होंने अपने से दूर कर दिया।पिता के द्वारा पर पहुँचे। पिता से कहते हैं, **हे पितः। माता की आज्ञा का पालन करना तो पुत्र का कर्तव्य होता है।** आप मुझे कर्तव्य से दूर क्यों ले जा रहे हैं? आप शोकाकुल क्यो हो रहे हैं? ममत्व में क्यों आ रहे हैं? माता का हृदय तो और भी नम्र होता है। हे पितः! आपका हृदय इतना नम्र बन गया है? यह मेरे विचार में नहीं आ पा रहा। आप अपने मनों में यह स्वीकार न करें कि "राम" कौशल्या के हैं। मानो मैं कैकेयी का ही पुत्र हूँ। यदि कैकेयी के गर्भ से मेरा जन्म होता तो माता कैकेयी वन जाने के लिए विवश कर देती। यह ऋषि मुनियों की भुजाओं में मुझे त्याग देती कि यह राम है। आज भी मेरी यही प्रिय माता हैं। उनके मेरे हृदय में द्वितीय भाव नहीं हैं। मेरे प्यारे! जब राजा दशरथ इन वाक्यों को पान कर रहे थे तो बेटा! उनका अन्तःकरण व्याकुल हो रहा था। वह ममत्व में परिणत हो रहे थे। पुत्र का मोह उन्हें विवश कर रहा था। राम कहते हैं आप मोह के वशीभूत न हो जाओ। मेरे वन जाने से कितना ही संसार मेरे से प्रसन्न होगा। कितना संसार मेरे से अप्रसन्न होगा? यदि मैं महापुरुषों की आज्ञा का पालन करता रहूँ तो मेरे जीवन का कुछ उपयोग है और यदि महापुरुषों की मैं आज्ञा का पालन नहीं करूँगा तो मेरे जीवन का कोई उपयोग नहीं है। मेरे पुत्र! उन्होंने कहा, सबसे प्रथम तो मेरे लिए माता ही महा माता है। उसके पश्चात और नाना ऋषि हैं। तो मेरे पुत्रो! राम इन उदारतामय शब्दों को उच्चारण कर रहे थे। परन्तु राजा मोहवश थे मोहवश हो करके व्याकुल हो रहे थे। राम को अपने हृदय से आलिंगन करते हुए बोले, हे पुत्र! मेरा हृदय नहीं चाहता। मेरे हृदय में यह वेदना नहीं है कि तुम वन चले जाओ। मेरे हृदय में तो यह है कि तुम राष्ट्र का पालन करो। राज को भोगो। राज के भोगने में ही मानो सर्वत्रता है।" मेरे प्यारे! राजा के वाक्य पान करके राम का हृदय मोहवश नहीं हुआ। वह एकरस रहने वाली महान आत्मा थी। इसीलिए मेरे प्यारे! मानव को तप में रहना चाहिए। कठोरता आ जाए, आपत्तिकाल आ जाए ,उसको आपत्ति जो स्वीकार नहीं करता और उसमें मगनता आ जाए तो मन में अति हर्ष नहीं आता। वास्तव में यह मानव महापुरुष कहलाता है। मेरे प्यारे! राम कैसे प्रिय महापुरुष कहलाए गए। वह सदैव दैवी सम्पदा में विचारते रहते थे।

देव पूजा

मुनिवरो! देखो कौशल्या जी को महर्षि वशिष्ठ कुछ उच्चारण करके अपने आश्रम चले गए। अब जब मुनिवरो! दिवस आया। सूर्य उदय हो गया। सूर्य उदय होने के पश्चात कैकेयी इत्यादि माताओं को प्रणाम करके वह कौशल्या के द्वार पर पहुँचे। माता कौशल्या के चरणों को स्पर्श किया। कौशल्या अति हर्षित हो रही थीं। क्योंकि कौशल्या नहीं चाहती थी कि मेरा राम इस राजसी विचारों में पनपता रहे। क्योंकि वह राज सभाओं को जानती थी। राजनीतिज्ञता उसके हृदय में थी। वे सदैव यह चाहती थीं "यह जो राजा दशरथ है इसने अपने स्वार्थ के लिये वेद की परम्परा को नष्ट कर दिया है। एक पुरुष, एक देवी ,दोनों ही ,वेदों में एक सार्थक माने जाते हैं। जैसे प्रकृति और ब्रह्म का मिलान होने से सृष्टि का प्रादुर्भाव हो जाता है, इसी प्रकार पति–पत्नी दोनों एक ही रूपों में रहते हैं और एक ही रूपों में रह करके उनके जीवन की सार्थकता कहलाती है। परन्तु मेरे पतिदेव ने यह बड़ा असत्य किया है कि तीन संस्कार कराये हैं। अपने स्वार्थ के लिए किए हैं। यह वैदिक परम्परा के अनुरूप नहीं हैं।" कौशल्या बड़ी हर्षित हो रही थी और वह कह रही थी, राम तुम वन जा रहे हो? उन्होंने कहा हाँ, माता! मुझे आज्ञा दीजिए। कौशल्या कहती है धन्य है पुत्र! जाओ तुम चौदह वर्ष माता की आज्ञा का पालन करो। आज के दिवस के लिए मैंने तुम्हें अपनी लोरियों का पान कराया था। तुम्हें प्रतीत है राम! जिस समय तुम मेरे गर्भस्थल में पनप रहे थे, महर्षि श्रृंगी ने यह कहा था कि तुम राजसी अन्न को ग्रहण नहीं करना। मैंने कला–कौशल करके अपने उदर की पूर्ति का प्रयास किया था। तपमय अन्न होना चाहिए। उस अन्न के द्वारा मैंने तुम्हें पनपाया। अपनी लोरियों का पान कराया। आज का दिवस मेरे लिए शोभनीय है। आज मेरा पुत्र शोक से रहित है। मग्न हो रहा है, एक ही रस में हो रहा है। मानो देखो यह माता उसे आज्ञा देती है।

मेरे प्यारे! इतने में सीता ने आकर के कहा, हे मातेश्वरी! मुझे भी आज्ञा दो। मैं राम के सहित ही उनकी सेवा करना चाहती हूँ। मैं सेवा में परिणत रहना चाहती हूँ। पत्नी अपने पति से होती है या प्रभु से होती है। जैसे आत्मा की चेतनता प्रभु से होती है ऐसे ही पत्नी को जो कार्य करने की कुशलता प्राप्त होती है वह पति के द्वार पर होती है। मेरे पुत्रो! सीता के इन शब्दों को पान करते ही कौशल्या बोली पुत्री! मैं तुम्हारे लिए कोई भार नहीं बनना चाहती हूँ। मैं तुम्हें विडम्बना में नहीं ले जाना चाहती हूँ। तुम्हारी इच्छा है तुम यह चाहती हो कि वन में अपने जीवन को व्यतीत कर सकती हो तो तुम जाओ और वन में रहो। पति के साथ रहो, उसकी सेवा करो, पति की आज्ञा का पालन करो। तुम भी वीर्यत्व को प्राप्त होना। मेरे प्यारे देखो यह उपदेश देकर के अब लक्ष्मण भी यही उच्चारण करने लगा। मानो देखो, तीनों प्राणियों ने अयोध्या में जहाँ वह राजसी वस्त्रों को धारण करते थे वहाँ भगवा वस्त्रों को मानो ब्रह्मचर्य व्रत को धारण करके अयोध्या को त्याग देते हैं। परिणाम बेटा! तुम्हें यह प्रतीत होगा, तुम तो यह जानते हो 14 वर्ष का उनका वन का संकल्प था। वन का अभिप्राय तुम जानते हो, वन कहते हैं जहाँ किसी प्रकार की उन्हें सहायता प्राप्त न हो। मानो जहाँ उन्हें उनके जीवन का जो हृदय रूपी जो वन है वह इतना विशाल बन जाए कि प्रतयेक प्राणी उनका देखो मित्र बन जाए। ऐसा जो वन होता है वही तो राम जैसे सखा को ऊँचा बनाता है। मेरे प्यारे! देखो भयंकर वनों में नाना प्रकार की आपत्तियों का पान करते हुए, सरयू को तैरते हुए भयंकर वनों में वह पर्वतों की शैय्या बनाने वाले बने। वह पर्वतों की शैय्या बना रहे थे।

सीता की सिंह से प्रार्थना

वन में रात्रि छा गई। मुनिवरो लक्ष्मण की जागरूकता समाप्त हो गई। मेरे प्यारे! दोनों विधाता विश्राम करने लगे। सीता भी विश्राम करने लगी। यह कहा जाता है कि भयंकर वन में सिंह आ गया। वह तीनों प्राणियों के आँगन (समीप) को आ रहा था। उस समय सीता जागरूक थी सीता कहती है, आज मैं यह कैसा दृष्टिपात कर रही हूँ। यह हिंसक प्राणी आ रहा है। सिंहराज आ रहा है। मैंने इनको जागरूक किया तो यह पातक लगेगा। क्योंकि राम की मैं पत्नी हूँ। जागरूक करने का मेरा कोई अधिकार नहीं है। ये मेरे स्वामी हैं, क्योंकि प्रबल हें, मेरे पूज्य हैं। लक्ष्मण को अगर मैंने जागरूक किया तो मानो वह मेरे पुत्र के तुल्य है। उपनिवेश का नियम कहता है, ऋषि कहते हैं दर्शनों के कि कोई मानव गाढ़ निद्रा में परिणत है, उसको जागरूक करना पातक लगेगा। अब मैं पातक बनूँ या मृगराज के मुख में परिणत हो जाऊँ? क्योंकि वह इन तीनों प्राणियों को नष्ट न कर जाये। इसका वन है, इसका राज है यहाँ। यह वन का अधिराज है। परन्तु सीता अपने प्रभु से याचना करती है। देवत्व की भावना से कहती है "मृगराज! यह मैं जानती हूँ कि हम तुम्हारे वन में, गृह में विद्यमान हैं। यह जो वन है यह तेरा गृह है। परन्तु यह भी तेरा कर्तव्य नहीं है। तू सिंह है, क्या तेरे गृह में कोई अतिथि आ जाए और वह अतिथि मानो तेरा अतिथि न रहकर के तू उनका आहार करने लगे तो मानो तेरा सिंहपन नहीं रहेगा। मेरे प्यारे! अतिथियों की सेवा करना हमारे धर्मज्ञ ऋषि–मुनियों ने इसको स्वीकार किया है। हे मृगराज! मैंने तुम्हें कई जन्मों में दृष्टिपात किया है। तुम ऋषि–मुनियों के आश्रमों में दर्शनों का अध्ययन करते रहे हो। वेद–मन्त्रों का अध्ययन करते रहे हो। यह तेरा राष्ट्र है, हम तेरे अतिथि हैं।" मेरे प्यारे! वह जो सीता के हृदय की इन्द्रियों के, मन के समन्वय के साथ जो तनमयी प्रार्थना थी वह मृगराज के अन्तःकरण को प्रभावित कर गई। बेटा! ऐसा मुझे स्मरण है। ऋषि वाल्मीकि यह कहा करते थे कि सिंहराज ने उस मार्ग को त्याग करके दूसरे मार्ग को प्राप्त कर लिया। मेरे प्यारे! देखो वह जो मनोनीत भावना हे, वह जो स्वच्छ हृदय की वेदना है वही तो इस संसार को और दूसरे प्राणियों को ऊँचा बनाती है। मेरे प्यारे! सिंहराज ने द्वितीय मार्ग को प्राप्त कर लिया। सीता आनन्द से विश्राम को प्राप्त हो गई।

महर्षि अत्री और माता अनूसूया

प्रातःकाल हुआ। प्रातःकाल में सर्वत्र जागरूक हुए। अपनी नाना क्रियाओं से निवृत होकर के उन्होंने लक्ष्मण को आज्ञा दी, "जाओ लक्ष्मण! तुम समिधा लाओ।" वे वट वृक्ष, पीपल वृक्ष की समिधा लाए। कुछ सामग्री वन में से एकत्रित करके उन्होंने अग्न्याधान किया और अग्न्याधान करके उन्होंने यज्ञ किया और यज्ञ करके अर्थात् देवपूजा करके उन्होंने वहाँ से प्रस्थान किया। मेरे प्यारे! भ्रमण करते हुए अगले दिवस महर्षि अत्रि मुनि के आश्रम में उन्होंने प्रवेश किया। महर्षि अत्रि मुनि ने आश्रम में जब प्रवेश किया तो माता अनुसूया ने उन्हें हृदय से आलिंगन किया। हमारे यहाँ वैदिक परम्परा यह कहती है कि यदि कन्या अपने गृह को जाने लगे तो माता–पिता का यह कर्तव्य है कि अपने जो चन्द्र और सूर्य स्वर होते हैं उनसे कन्या के मस्तक को चुम्बन करना चाहिए, अपने श्वास की गति देनी चाहिए। इससे भाव यह होता है कि हे पुत्री! जब तक मानो देखो मेरा श्वास गति कर रहा है जब तक मानो तुम्हारा यह मस्तिष्क है में अपने श्वासों से तेरे मस्तक को 'ऊँची दृष्टि से उड़ान उड़ता रहूँ, मानो उसके पश्चात उसके गर्भ में यह भावना होती है। मानो अनुसूया ने सर्वत्र तीनों प्राणियों के मस्तक का चुम्बन किया और प्राण के द्वारा उनकी दृष्टिपात कर लिया। क्योंकि प्राण ऐसा है हमारे द्वारा कि नाना प्रकार के हृदय के परमाणु देखो उसके मस्तक पर त्यागता है। मुनिवरो! यह भावना, संस्कृति का मनोनीत एक प्रतीक माना गया है। इस प्रतीक के सहित मानव को अपनी विचारधारा को कितना महान उज्ज्वल बनाना है।

माता अनुसूया और अत्रि मुनि महाराज त्रेता के काल में दोनों परमाणु विद्या के विशेषज्ञ कहलाए जाते थे, दोनों अनुसन्धान करते थे। संसार में पति–पत्नी का अभिप्राय अनुसन्धान करना है, गृह को ऊँचा बनाना है, गृह में स्वर्ग लाना है, और स्वर्ग वह परमाणुओं की दर्शनो के वचनों से गृह ऊँचा बनता है, दार्शनिक विचारों से ऊँचा बनता है अत्रि मुनि और अनुसूया दोनों अनुसन्धान करते रहते थे। अनुसूया ने बहुत सा सीता को उपदेश दिया और ये कहा कि हे पुत्री! तुम आज्ञा का पालन करना, अपने मनोनीत को सुदृढ़ बनाना। जब तक वन में रहना हे तो वनचरी रहना है, भोगचर में नहीं जाना है, गृहचर में नहीं जाना है। तुम वनचर हो और वनचरी का कर्तव्य है कि वन में तो प्रभु ही रहते हैं, और प्रभु से दूर नहीं होना है। प्रभु से दूर होना ही भोगचर में जाना हे। वनचर समाप्त करके भोगचर में जा करके उस मानव का विनाश हो जाता है। ऐसा माता अनुसूया अपने वचनामृत का पान करा रही थी।

वरूणास्त्र

जब राम प्रस्थान करने लगे, तो तीनों प्राणियों को एक पंक्ति में विद्यमान करके महर्षि अत्रि ने और माता अनुसूया ने उन्हें एक शस्त्र दिया। उस शस्त्र में ये विशेषता थी कि जब उस शस्त्र का अन्तरिक्ष में प्रहार होता था तो अन्तरिक्ष से जल की वृष्टि होनी प्रारम्भ हो जाती थी। वहाँ कितना भी अग्निकांड हो रहा हो अग्नि शस्त्रों का प्रहार हो रहा हो। उस यन्त्र में ये विशेषता थी कि उसे वरुणास्त्र कहते थे वरुण कहते हैं जल को, जलों की वृष्टि होती, जलों की वृष्टि से सेना की और राज्य की रक्षा हो जाती।

बेटा! मैं विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ। विचार यह देने के लिए आया कि मैं तुम्हें उस काल में ले गया जहाँ ऋषि–मुनियों , त्यागी व तपस्वियों का काल रहता था तुम्हें प्रतीत होगा कि जब राम, रावण का संग्राम हुआ था, जब मेघनाथ ने एक अस्त्र को त्यागा था। तो ऊपर से अग्नि की वृष्टि होने लगी थी। राम की सेना, वानर सेना समाप्त होने लगी थी। उस समय राम ने अस्त्र का प्रहार किया था। इस अस्त्र से जलों की वृष्टि हुई थी और अग्नि का प्रसार समाप्त हो गया था और सेना की रक्षा हो गई थी। अब मैं दूर नहीं जाना चाहता हूँ। वे अस्त्र उन्हें दे करके उनके मस्तिष्कों का चुम्बन करके ऋषि, ऋषि पत्नी ने उन्हें आज्ञा दी और यह कहा धन्य है। वनचर को बहुत ऊर्ध्व गति में ले जाना।

आज का विचार क्या, आज मैं तुम्हें यह उच्चारण कर रहा हूँ कि प्रत्येक मानव को तपस्वी रहना है, तप में ही जीवन को व्यतीत करना है। तप ही हमारा जीवन है और तप से ही मात ममतामयी बनती है तप के द्वारा ही मानव, मानव बनता है, तप के द्वारा ही मानव ऋषि बनता है, तप के द्वारा ही मानव देवता बनता है। तप के द्वारा ही ब्रह्मचर्य ब्रह्म को प्राप्त करता है। यह है बेटा आज का वाक्य आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए देव की महिमा का गुणगान गाते हुए इस संसार सागर से पार हो जाएँ। यह है बेटा! आज का वाक्य। अब मुझे समय मिलेगा तो मैं शेष चर्चाएँ कल प्रकट करूँगा। अब वेदों का पाठ होगा। इसके पश्चात वार्ता समाप्त।निवास स्थानः सेठ राम प्रकाश जी अमृतसर समय रात्रि 8.30 बजे

१०. विराट रूप 16–05–1975

जीते रहो!

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भाँति कुछ मनोहर वेछ–मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद–मन्त्रों का पठन–पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेद–वाणी का प्रसारण होता रहता है। जिस पवित्र वेद–वाणी में आत्मा सम्बन्धी विवेचना की जाती है, ज्ञान और विज्ञान की आभाओं का वर्णन प्रायः होता रहता है।

हमारा वेद का ऋषि ऊँची से ऊँची घोषणा करता हुआ यह कह रहा है, और घोषणा करता हुआ यह कह रहा है कि मानव समाज अपनी मानवीयता को सदैव प्राप्त होता रहे। उसकी मानवता केवल मनन करने मात्र में नहीं है। क्योंकि मनन करना जहाँ अनिवार्य होता है वहाँ मेरे प्यारे मानव को भोजन भी प्राप्त करना है जैसे बेटा पालन–पोषण करने के लिए, शरीर के लिए भोजन अनिवार्य कहलाया गया है इसी प्रकार आत्मा का जो भोजन है वह भी बहुत अनिवार्य है। यह जो शारीरिक भोजन है यह उस आत्मा का भोजन प्राप्त करने के लिए गृह कहलाया गया है। जहाँ मानव प्रातःकाल से सायंकाल तक अपने शारीरिक भोजन के लिए प्रयत्नशील रहता है वहाँ आत्मा का भोजन भी बहुत अनिवार्य है।

विचार आता है कि शारीरिक भोजन क्या है और आत्मिक भोजन क्या है? मेरे प्यारे ! शारीरिक वह भोजन जो नाना प्रकार का खाद्य पदार्थ है जो हस्त के द्वारा मानव को प्राप्त होता है, उसके लिए अर्थ की आवश्यकता है , परिश्रम की आवश्यकता है। मेरे प्यारे ! वह परिश्रम करता रहता है, उसके पश्चात जैसे यह शरीर के भोजन है, शरीर के लिए परिश्रम करना बहुत अनिवार्य माना जाता है इसी प्रकार आत्मा का भोजन भी बहुत अनिवार्य है। आत्मा का भोजन क्या है? बेटा! आत्मा का भोजन अपने स्वतः आत्मा को जानना है और उसको जानने के लिए परमपिता परमात्मा का चिन्तन करना है। जब मानव–परमात्मा का चिन्तन करता है, उस प्रभु का गान गाता है तो उस मानव को बेटा ! आत्मा का भोजन प्राप्त होता है।

आत्मा का भोजन शब्दों के द्वारा, रूप के द्वारा, घ्राण के द्वारा, रसना के द्वारा इस मानव को प्राप्त होता है। प्रत्येक मानव इस चिंता में लगा रहता है कि हमारा मानवीय धर्म क्या है, आत्मा तक हम कैसे जा पाएँगे? यहाँ वेद का ऋषि बहुत सुन्दर वाक्य कहता है "आत्मानम् भवना प्रभु कृताः" आत्मा का भोजन प्राप्त करने के लिए मानव को सत्संग की आवश्यकता है, सत्य को आचारण करने की आवश्यकता है। मेरे प्यारे ! मानव के अन्तःकरण में जन्म–जन्मान्तरों के संस्कार विराजमान हैं। उस अन्तःकरण में मेरे प्यारे ! ऊर्ध्वागति वाली तरंगों को स्मरण कर लाना बहुत अनिवार्य कहलाया गया है।

आओ मेरे प्यारे ! मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जब ऋषि–मुनि विराजमान हो करके अपना चिन्तन करना प्रारम्भ करते थे और अपनी अपनी वार्ता प्रगट कराया करते थे । बेटा ! जब मै महाभारत के काल में जाता हूँ तो प्रायः ऐसा दृष्टिपात आता है कि भगवान कृष्ण और अर्जुन दोनों एकान्त में विराजमान होकर आत्मा का और शारीरिक भोजन दोनों का प्रयास करते थे, मेरे प्यारे ! दोनों का चिन्तन करना बहुत अनिवार्य है।

मुझे वह काल स्मरण है , आत्मा का जो भोजन है इसे यह बाहरीय जगत! में अज्ञान, ममता छा जाने से मानव उपरामता को प्राप्त हो जाता है। मेरे प्यारे ! विचार–विनिमय यह कि हम आत्मा का भोजन पान करते हुए इस संसार से उपरामता को प्राप्त हो जाएँ। उपरामता क्या है? मैने पुरातन काल में तुम्हें पर्णन कराते हुए कहा था और वह निर्णय क्या है जब अज्ञान को नष्ट किया जाता है, मुनिवरो देखो ! मानव अपनी अन्तरआत्मा में ध्यानावस्थित हो जाता है क्योंकि संसार में दो प्रकार की धाराएँ हैं, एक तो आत्मिक धारा है एक मेरे प्यारे ! एक रूढ़ि धारा मानी गई है जो लौकिक कहलाई जाती है। एक लौकिक है और एक पारलौकिक कहलाई जाती है। जैसे बेटा वेद का अर्थ है । एक को रूढ़ि माना गया है और दूसरा यौगिक माना गया है। मेरे प्यारे ! यौगिक जो अर्थ है , यौगिक जो धाराएँ हैं वह मानव के योग से प्राप्त होती हैं और जो रूढ़ि हैं,? सामाजिक पद्धति है वह समाज में रूढ़ि से प्राप्त होती है। तो यहाँ वेद का ऋषि कहता है कि तुम रूढ़ि को जाना करके यौगिक क्षेत्र में चले जाओ। यौगिक अर्थों को जानते हुए, यौगिक धाराओं को जानते हुए इस संसार सागर से पार हो जाएँ। यह यौगिक ही बेटा! आत्मिक भोजन कहलाया गया है। इसलिए आत्मा का भोजन क्या है यौगिकता ही आत्मा का भोजन माना गया है ।

मेरे प्यारे मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जब मुनिवरो देखो ! माता चाक्राणी गार्गी अपने आसन पर विराजमान थीं। एक समय बेटा चाक्राणी अपने आसन पर विराजमान थी, शाण्डिल्य गोत्र में उनका जन्म हुआ था, वह विदूषी थी, वीरांगना कहलाती थी, तो मेरे प्यारे! वह आत्मा के भोजन का चिंतन कर रही थी, उस आत्मा को भोजन प्रदान कर रही थी। तो आत्मा को भोजन प्रदान किया जा रहा था वह आत्मा का भोजन क्या था ? वह प्रभु का गान था। "इतनी निर्भयता थी कि उनके गान को श्रवण करने के लिए सिंहराज उनके आसन पर विराजमान थे, सिंहराज उनकी ध्वनि को पान कर रहे थे जो चाक्राणी के मुखारबिन्दु से उत्पन्न हो रही थी, उस ध्वनि को पान करने वाले मृगराज सिंह राज उनके चरणों को छूते थे। जब उनके चरणों मे स्पर्श कर रहे थे तो ब्रह्मचारी

सुकेता उनके आसन पर आ विराजे ,ब्रह्मचारी सुकेता कहा कि हे देवी! यह हिंसक प्राणी आपके चरणों में है ? उस समय उन्होने कहा जैसे मैं आत्मा को भोजन प्रदान कर रही हूँ ऐसे ही आत्मा का भोजन पान करने के लिए मानो देखो ! यह मृगराज, सिंह राज भी मेरे आसन पर विराजमान है आत्मा को भोजन प्रदान करने के लिए मेरे आसन पर ओत–प्रोत हो रहे हैं। तो विचार आता है कि आत्मा का भोजन क्या है? परमात्मा का चिन्तन है। परमात्मा का चिन्तन करने वाले आत्मा के भोजन को पान करते रहते हैं। मैनं बहुत पुरातन काल मे तुम्हे निर्णय कराया आत्मा का भोजन वह है जब मानव आत्मा से कोई विवचेना करता है, आत्मा से कोई चर्चा करता है तो उसे समय हिंसक प्राणी अपने आसन को त्याग देता है।

त्रेता काल की एक वार्ता स्मरण आती रहती है बेटा! मुझे। त्रेता काल की एक वार्ता में राम, लक्ष्मण और सीता जब भयंकर वन में विराजमान थे मुनिवरो देखो, पंचवटी पर विराजमान थे । तो मुनिवरो देखो ! रात्रिकाल में उनके समीप कोई नहीं रह पाता था। तो मेरे प्यारे! भयंकर वन था वे विराजामन थे । रात्रि का समय था मुनिवरो देखो ! लक्ष्मण और राम दोनों गाड़ निद्रा में तल्लीन थे जब गाड़ निद्रा मे तल्लीन थे तो मेरे प्यारे देखो ! सीता जागरूक थी । श्रवण किया जाता है कि सिंहराज आ गया वह मार्ग मे चला आ रहा था। सीता ने यह विचार कि मैंने अपने पति को जागरूक किया तो यह उनकी अवहेलना है, मैं योग्य नहीं हूँ, लक्ष्मण को जागरूक किया तो यह भी शोभा नहीं देता, अब मैं क्या करूँ, यह सिंहराज आ रहा हे। मेरे पति अथवा मुझे आहार भी कर जाए , हो सकता है एक स्थान पर मेरे प्यारे यह कल्पना आ रही थी माता सीता ने अपने आसन पर विराजमान हो करके मृगराज से चिन्तन किया। "मनावंचेचत्तम् चिन्तन आसताः" मेरे प्यारे जब उन्होंने चिन्तन किया और यह प्रार्थना की कि हे सिंहराज ! हम यह जानते हैं कि हम तेरे राष्ट्र में विराजमान हैं, तुम इस भयंकर वनों के धिराज हो परन्तु देखो आज मै यह मेरे लिए शोभा नहीं देता कि आप मेरे आसन पर आयें और हिंसक बन करके आयें। मैं चाहती हूँ कि अहिंसा परमोधर्म तेरे अन्तरात्मा में भी विराजमान हो और वह अन्तरात्मा उज्जवलता को प्राप्त करता हुआ मेरी प्रतीज्ञा को नष्ट नहीं कर दे। मेरे प्यारे जब सीता ने यह वाक्य प्रकट किया तो कहा जाता है कि मृगराज ने इन वाक्यों को श्रवण करके मार्ग से कुमार्ग को चल दिया। यह आत्मा की एक मनोहर शक्ति है, यह आत्मा का बल है जो सिंहराज मार्ग त्याग करके कुमार्ग को चला जाता है। तो विचार विनिमय क्या मेरे प्यारे ! मृगराज भी उनके चरणों में ओत–प्रोत होते हैं। यह आत्मा का ही तो बल है।

मेरे प्यारे देखो मुझे वह काल स्मरण आता रहता है आत्मा के काल की चर्चाए स्मरण आती रहती है मुनिवरो देखो !द्वापर के काल में महाभारत का संग्राम हो रहा है। दोनों पक्ष की सेना विराजमान है। भगवान कृष्ण और अर्जुन दोनों पक्ष की सेना मे विराजमान हैं। अर्जुन ने कृष्ण से कहा कि प्रभु! मैं दोनों पक्षों की सेनाओं को दृष्टिपात करना चाहता हूँ कैसी विशाल सेनायें हैं। जो मानो देखो , ये हमारे कुल का कल्याण चाहने वाली सेना हैं और हमारे कल्याण के लिये नाना राजा महाराजा एकत्रित हो रहे हैं। मै उन दोनो पक्षो को दृष्टिपात करना चाहता हूँ मेरे प्यारे ! भगवान कृष्ण और अर्जुन दोनों , सेनाओं के मध्य विराजमान हो गये और जब दोनों सेनाओं मे मध्य मे विराजमान हो गये अब दोनो पक्षो की दृष्टिपात करने लगे मेरे प्यारे ! उनमे अपना ही वंशलज विराजमान है , अपने ही सम्बन्धी विराजमान हैं। मेरे प्यारे उनके बाबा भीष्म जो राष्ट्रपिता कहलाते हैं आदित्य ब्रह्मचारी हैं अपने–अपने आसन पर विराजमान हैं और एक–दूसरे प्राणो को हनन करने के लिए तत्पर हैं। अब मेरे प्यारे ! उस काल में अर्जुन का ह्रदय विदीर्ण हो गया, कम्पायमान हो गया मेरे प्यारे देखो ! अर्जुन कहता है कि है कि महाराज! हे जनार्धन! मैं यह क्या दृष्टिपात कर रहा हूँ? मैं अपने कुटुम्ब को दृष्टिपात कर रहा हूँ? अपने कुटुम्ब के सम्बन्धी ही दृष्टिपात कर रहा हूँ। यह सब हमारे कल्याण के लिये विराजमान हैं अथवा अकल्याण के लिये। जब बेटा यह वाक महाराजा भगवान कृष्ण ने श्रवण किया तो वह अर्जुन से कहते हैं कि हे अर्जुन! यह तुम क्या वाक् उच्चारण कर रहे हो। यह वाक् तुम्हारे मुखारबिन्दु से शोभा नहीं देते क्योंकि यह अज्ञान है, यह अज्ञानमयी जीवन है। मेरे प्यारे अर्जुन ने भगवान कृष्ण से कहा कि मैं संग्राम नहीं चाहता। क्योंकि मैं लोक के लिये अपने कुटुम्ब को समाप्त नहीं करना चाहता हूँ। मेरे प्यारे ! भगवान कृष्ण ने यह विचारा क्या करना चाहिये इसको तो अज्ञान छा गया । ममतामयी आ गयी है मानो यह ममतामयी मानव का ह्रास कर देती है। मानव के जीवन का विनाश कर देती है, कर्तव्य की अवहेलना कर देती है। यहाँ कर्तव्य आना बहुत अनिवार्य है। मेरे प्यारे ! जब उन्होने कहा हे अजुर्न ! यह तो तुम्हारा कर्तव्य है। मानो देखो , मानो , इन मानव शरीरो मे जो आत्मा प्रवेश कर रही है, आत्मा जो गति कर रही है उस आत्मा का विनाश नहीं होता। यह आत्मा सदैव एक रस रहने वाली चेतना है। आज तुम आत्मा के लिये मानो देखो ब्रीही मोह करते हो या शरीर के लिये मोह करते हो मानो , यह शरीर भी विनाश को प्राप्त हो जाता है। तुम्हे यह प्रतीत है दर्शन कहता है दार्शनिक मानव कहता है "दर्शनम्! ब्रहे कृताः विश्वच प्रीही कृति अस्वनाः" हे अर्जुन! दर्शनकार कह रहा है क्या जिस वस्तु का निर्माण होता है जो वस्तु परमाणुओं से निर्माणित होती है उस वस्तु का विनाश अनिवार्य है। जब विनाश अनिवार्य है तो उसके लिए शोक करना तुम्हारे लिए व्यर्थ है परन्तु जिस वस्तु का विनाश नहीं होता,जो वस्तु जो सदैव रहने वाली है मानो देखो , उसके लिए शोक करना तुम्हारे लिए व्यर्थ है।

जब बेटा उन्होने ऐसे शब्दो का उच्चारण किया तो अर्जुन ने कहा तो प्रभु! जब यह स्वाभाविक होने वाला है तो मुझे अकीर्ति वाले कर्म में क्यों परिणत कर रहे हैं? उन्होंने कहा हे अर्जुन! यह अज्ञान, यह तुम्हारा अज्ञान है। मेरे प्यारे ! उन्होने कहा अपनी अन्तरात्मा में ध्यानावस्थित हो जाओ। मेरे प्यारे जब अर्जुन अन्तरात्मा मे ध्यानावस्थित हो गये अपने बाह्य जगत को आन्तरिक जगत मे दृष्टिपात करने लगे तो बेटा देखो , उन्हें आत्मिक शान्ति उत्पन्न हुई। उनकी ममता में सान्तवना की स्थापना होने लगी। उन्होने मेरे प्यारे कर्तव्य के लिए कहा कि अर्जुन तेरा कर्तव्य है ये, और कर्तव्य की अवहेलना करने वाला प्राणी देखो मानो , मेरे प्यारे अपर्कीती को प्राप्त होता है । इसीलिए मेरे प्यारे , प्रत्येक मानव, प्रत्येक देवकन्या को इस संसार में अपने–अपने कर्तव्यवाद मार्ग को ग्रहण कर लेना चाहिये। जो भी संसार में कर्तव्य करने वाला है , वह महान कहलाया गया है। हे अर्जुन प्रातः काल में सूर्य उदय होता है, और सूर्य अपना प्रकाश लेकर आता है, संसार को तपाता रहता है , प्रकाशमान करता रहता है। वह प्रातःकाल से सायंकाल तक तपता रहता है। जब वह तपायमान रहता है तपता रहता है तो मानो देखो , सायंकाल को अस्त हो जाता है, अन्धकार छा जाता है, शुक्ल पक्ष छा जाता है। एक माह मे दो प्रकार के पक्ष होते हैं कृष्ण पक्ष और शुक्ल पक्ष। इसलिये हे अर्जुन! जब शुक्ल पक्ष आ जाये तो मानव को अभिमान में परिणत नहीं होना चाहिये और जब अन्धकार, कृष्ण पक्ष जा आये तो मानव को अपनी मानवीयता में, ह्रासता को प्राप्त नहीं होना चाहिये। इसलिये हे अर्जुन! आज तुम अपने कर्तव्य का पालन करते हुए मानवीयता में रमण करते चले जाओ।

इतना उपदेश देने के पश्चात भगवान कृष्ण ने कहा कि हे अर्जुन! तुम मेरी अन्तरात्मा में प्रवेश कर जाओ। मेरे प्यारे ! जब उन्होंने उनकी अन्तरात्मा में प्रवेश किया तो उन्हें ऐसा विराट रूप उन्हे दिग्दर्शन कराया मेरे प्यारे अग्नि प्रदीप्त हो रही है, मानो , समुद्र अपनी आभा में स्थिर हो रहा है, मेरे प्यारे ! वायु गति कर रहा है, जल प्रभाव से गति कर रहा है, मेरे प्यारे ! पृथ्वी का चक्र चल रहा है। जब यह प्रकृति यह चक्र पंच महा भौतिक पिण्डों में गति कर रहा है। तो मेरे प्यारे ! यह संसार सर्वत्रता में विनाश को प्राप्त होता दृष्टिपात हो रहा है। मेरे प्यारे उन्होंने इस प्राकर लगभग एक घड़ी तक इस विराट रूप का दिग्दर्शन कराया तो दिग्दर्शन कराते ही उनका अन्तरातमा विशाल बन गया। अर्जुन ने कहा, प्रभु! मेरा अज्ञान समाप्त हो गया है । अब मैं कर्तव्य का पालन करूँगा, आप जो मुझे दृष्टिपात करा रहे हैं, मेरी आत्मा में प्रकाश दे रहे हैं। मेरी आत्मा मे जो प्रीत दे रहे है आज मैं उस आत्मा मे ,भयभीत होना नहीं चाहता हूँ, मैं उस मानो पामरता को प्राप्त करना नहीं चाहता हूँ।

उसे योगाभ्यास दृष्टिपात कराया जा रहा है। योग मे वह गति कर रहा है क्योंकि योग नाम एक–दूसरी वस्तु के मिलान का नाम याग कहा जाता है योग का अभिप्रायः क्या है योग कहते है जब यह पंच–महाभौतिकों से पिंड का निर्माण होता है। तो यह योग कहलाया गया है इसी योग के आधार पर योगी मेरे प्यारे ! प्राणायाम करते हैं और प्राणायाम करते हुए प्राण की गति को रेचक और कुम्भक में परिणित कर देते हैं। मेरे प्यारे देखो ! यह दस प्राण हैं, दस प्राणों की आभा को मन रुपी सूत्र में पिरो देते हैं। मन रुपी सूत्र मेरे प्यारे ! जब परमातमा अथवा ज्ञान में पिरोया जाता है तो उस समय मुनिवरो ! एक माला बन करके अन्तरात्मा प्रसन्न होता रहता है।

विचार–विनिमय क्या विचारना केवल हमारा यह है कि आज हम यह विचारते चलो जाएँ कि भगवान कृष्ण ने अज्ञानता को नष्ट करने के लिए, प्रकाश में मानव को लाने के लिए अपने सखा को प्रकाश में लाया गया। मेरे प्यारे ! उस समय वह अज्ञान समाप्त हो गया। वह विराट स्वरूप क्या है? एक–दूसरी आत्मा का दिग्दर्शन कराने का मेरे प्यारे ! नाम विराट स्वरूप माना गया है।

आत्मा एक चेतना है। वह चेतना में पंचमहाभूतों के आधार पर स्थिर रहने वाला है। यह जो पंच–महाभूत हैं जब आत्मा मेरे प्यारे ! अपने स्वरूप में रमण करता है तो यह पंच–महाभूत पृथक दृष्टिपात आते हैं और अपनी आत्मा–चेतना उसे पृथक दृष्टिपात आने लगती है।

मेरे प्यारे! यह मन और प्राण का यह जो जगत है यह दृष्टिपात होता है मन और प्राण ही मेरे प्यारे इस प्रकृतिवाद मे यह ही प्रकृति के चक्र को चला रहा है। प्राण से संसार का विभाजन होता है। मन से क्रिया का अव्रेत (भेद) होता है, ज्ञान की प्रतिभा उत्पन्न होती है। मन विभाजन करता है। मन एक वस्तु को विभाग में लाता है। एक विभक्त करने वाला और एक विभाजन होने वाली दो शक्तियाँ संसार में अपना कार्य कर रही हैं।

आओ मेरे प्यारे ! आज मैं विशेष चर्चा करने नहीं आया हूँ। भगवान कृष्ण ने यह कहा ढाई घड़ी के उपदेश में उन्होंने यही दिग्दर्शन कराया। एक घड़ी तक आत्मा को ब्रह्म का उपदेश दिया आत्मा को भोजन का चिंतन करने का आशवासन दिया और यह कहा, हे अर्जुन् तुम आत्मा को जानो, आत्मा को भोजन देने का प्रयास करो। आत्मा को भोजन देने वाला प्राणी संसार सागर से पार हो जाता है। संसार की आभाओं में वह आभायित होता रहता है।

परन्तु देखो उसके पश्चात देखो, भगवान भगवान कृष्ण कह रहे हैं हे सखा! यदि उससे भी अज्ञान समाप्त नहीं होता तो तुम मेरे में अपनी आत्मा को प्रवेश करो। मेरे प्यारे उन्होने आत्मा को ,आत्मा में ध्यानावस्थित हसे गए और उस प्रभु का चिन्तस करने लगे। जब प्रभु के आँगन में पंचमहा भौतिक पिंड की गतियों में गति करना प्रारम्भ हुई तो यह चक्र चलता दृष्टिपात हुआ। यह संसार , यह प्रकृति का चक्र चल रहा है जिसमें कोई मृत्यु को प्राप्त हो रहा है, कोई जीवन को प्राप्त हो रहा है। मृत्यु है, जीवन है, मरण है और जीवन है यह प्रकृति के चक्र में दृष्टिपात हो रहा है। परन्तु यह जो दोनों सेनाओं उन्हें दृष्टिपात आ रहा था यह भी मृत्यु के , काल के आँगन में विराजमान थी। काल इनको निगलता चला जा रहा था । भगवान कृष्ण ने कहा, हे अर्जुन! बिना समय के मानव की मृत्यु नहीं होती। वास्तव में मृत्यु कोई वस्तु नहीं है, मृत्यु केवल अज्ञानता में दृष्टिपात आती है। परन्तु मृत्यु को देखो यह तो क्रूत कहलाया गया है, आज तुम अपने जीवन को धारण करो, प्रकाश मे आओ। मेरे प्यारे ! देखो उन्होने जब आत्मा का आत्मा से मिलान हुआ, आत्मा से आत्मा की जागरूकता आई। मेरे प्यारे वह भी पुरुष था जिसको ममता नहीं थी और वह भी पुरुष था जिसे देखो ममता आ गई।

भगवान कृष्ण बोले हे अर्जुन! तुम्हें यह प्रतीत है कि "ब्रह्मे कृतः अरत्तम् ब्रह्म लोकाः प्रहा क्रतम् स्सतमम् लोकाः" व्यापकम देवा हे अर्जुन! तुम्हें यह प्रतीत है क्या मैं भी तुम्हारे विराजमान हूँ और तुम भी मानो देखो , मेरे सखा हो। मेरे समीप तुम्हारा जीवन प्रतिभा में परिणत रहा है, तुम्हें ज्ञान है, तुम्हें उस आभा में जाना है जिस आभा में योगी जाता है, जिसे मृत्यु से भी भय नहीं होता। यह संसार जो आज तुम्हारे कल्याण के लिए तुम जिसे कल्याण के लिए कहते हो इनका समय निकट आ रहा है, यह मृत्यु के मुखारबिन्दु में विराजमान हैं, तुम इन्हें नष्ट न करोगे, उस कर्तव्य का तुम पालन न करोगे तो उसके पश्चात भी इन्हें शरीर को त्यागना है और करोगे तो उसके पश्चात भी इन्हें शरीरों को त्यागना है। जब यह उपदेश दिया और कहा, हे अर्जुन! मुझे ममता नहीं आती संसार की। कारण क्या है क्योकि दर्शनो का जो आनन्द है ,और वह जो आत्मा का भोजन है , इस आत्मा के भोजन को जो मानव पान कर लेता है आत्मा का भोजन जिस मानव को प्राप्त हो जाता है वह इस संसार से उपरामता को प्राप्त हो जाता है।

आत्मा का भोजन क्या है? रूप, रस, गंध कहलाया गया है, इस रूप, रस, गंध को एक स्वरूप में ला करके, एक मानो , प्रतिभा बना करके इसको जो पान कर लेता है इसके वास्तविक स्वरूप को जो अपनी अन्तरात्मा में धारण कर लेता है तो हे अर्जुन! वह इस संसार से उपरामता को प्राप्त हो करके कर्तव्य की अवहेलना नहीं करता, वह कर्तव्य से दूर नहीं होता, वह सदैव कर्तव्यवादी बन करके वह अपनी आभा में रमण करता रहता है, जब यह उपदेश दिया, ढ़ाई घड़ी के उपदेश मे , विराट स्वरूप का वर्णन कराया, विराट स्वरूप मे यही आता है प्रकृति का चक्र चल रहा है और यह संसार जीवन मे मरण मे प्राप्त हा रहा है मेरे प्यारे! अर्जुन का अज्ञान नष्ट हो गया।

भगवान कृष्ण ने कहा, हे अर्जुन! वह भी तो महापुरुष हैं जो अपनी ममता को तयाग करके ज्ञान सागर में चले जाते हैं, वे परमात्मा के क्षेत्र में चले जाते हैं, परमात्मा को प्राप्त हो जाते हैं। वह भी मानव हैं जो स्थूल सूक्ष्म और कारण शरीरों को जानते हुए परमात्मा को प्राप्त हो जाते हैं। वह त्याग और तपस्या को त्यागते चले जाते हैं, स्थूल शरीर को त्यागते हैं। परन्तु देखो ऐसे भी महापुरुष संसार मे होते हैं जो इस शरीर को बिना माता–पिता के भी इस मानो , शरीर को आत्मा ग्रहण करता रहता है, जब यह आत्मा सूक्ष्म शरीर में चला जाता है, परन्तु देखो , आत्मा में इतनी शक्ति प्राप्त हो जाती है, प्राण और मन के द्वारा मन और प्राण मानो कारण और कार्य दोनों को अपने वशीभूत करता हुआ मेरे प्यारे ! अपनी संकल्प–शक्ति से यह वायुमण्डल में जो पंच–महाभौतिक तरंगें रमण कर रही हैं उन पंच–महाभौतिक तरंगों को वह अपने स्वतः धारण करके वह आत्मा स्थूल, सूक्ष्म से ही दोनों शरीरों को अपनी संकल्प–शक्ति से धारण कर लेता है। उसके पश्चात वह लिंगमय ज्योति में चला जाता है। और लिंगमय शरीर में जाने से यह उस परमपिता परमात्मा को प्राप्त हो जाता है जो संसार का नियन्ता है, जो संसार को धारण करने वाला है, इस संसार मे आभा से युक्त होने वाला है उसको प्राप्त होता रहता है। मेरे प्यारे जब अर्जुन ने इन वाक्यों को श्रवण किया तो उनका अज्ञान, ममतामयी नष्ट हो गया।

उन्हें ब्रह्म का उपदेश दिया। आत्मा–परमात्मा के स्वरूप का वर्णन कराया। ओर उसके पश्चात उन्होने क्रियात्मक जो उन्होने, अपने जीवन मे जाना, उस स्वरूप का दिग्दर्शन कराते हुए उनका अज्ञान समाप्त हो गया उस अज्ञान को समाप्त करने वाले,मेरे प्यारे वह महापुरूष होते है जो इस अज्ञान को नष्ट कर देते है।मेरे प्यारे महापुरुषों की गोद में जाना, इसीलिए मानव को अनिवार्य है और महापुरुष यह जानता है कि यह अधिकारी है अथवा अनधिकारी है। अधिकारी–अनधिकारी का जानने वाला ब्रह्मवेता , मन्थन करने वाला कहलाता है।

आओ मेरे प्यारे आज मै विशेष चर्चा प्रगट करने नही आया हूँ। विचार विनिमय क्या ,आज का वाक्य कह रहा है क्या हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए आत्मा को भोजन देने का प्रयास करें। आत्मा का भोजन क्या है , कया यह संकल्प शक्ति से इतनी ,संकल्प–शक्ति इतनी विशाल बन जाए क्या हिंसक प्राणी भी संकल्पमात्र से दूरी चला जाए। मेरे प्यारे देखो, उस संकल्प–शक्ति से परमात्मा का चिंतन किया जाता है, और वह जब अन्तरात्मा में प्रवेश किया जाता है। वही अन्तरात्मा का भोजन है बेटा !

देव पूजा

मेरे प्यारे! मुझे वह काल स्मरण आता रहता है ,मैंने तुम्हे अभी–अभी प्रकट करा रहा था मेरे प्यारे देखो चाक्राणी का जीवन ! मुनिवरो देखो ! यहाँ ऋषि–मुनियों का जीवन जब स्मरण आता रहता हे। उनका अन्तरात्मा इतना विशाल बन जाता है क्या शरीर के भोजन को तो वायु तत्वों से अपने में सिंचन कर लेते हैं। वायु में जो तत्व विराजमान हैं, अग्नि में जो तत्व विराजमान हैं ओर जलो मे जो तत्व विराजमान है बेटा उनसे वह अपने शारीरिक भोजन को अपने में सिंचन करते हैं। परन्तु जो आत्मा का जो भोजन है वह आत्म–संकल्प से, प्रकाश से, मन और प्राण को एक सूत्र में लाते ही बेटा! देखो, वह आत्मा का भोजन उसे प्राप्त हो जाता है।

मेरे प्यारे ! मानवीय दर्शन क्या हे? मानवीय दर्शन वही कहलाता है तो स्वतः आत्मा का दर्शन करता है। पंच महापिंडो के द्वारा , मेरे प्यारे ! पंचभूतों को जानता हुआ पंचमहाभूत जिसको स्थिर किए रहते हैं, जिसका धारण किए रहते हैं। मेरे प्यारे! जो पंचभूतों को धारण करता है उसकी आभा का नाम ब्रह्म कहलाया गया है, वह भी आत्मा का भोजन है। आत्मा का भोजन जैसे बेटा ! यह आत्मा को शरीर है मानव शरीर में 72 करोड़, 72 लाख, 10 हजार, 202 नाड़ी कहलाई जाती है । परन्तु इन नाना प्रकार की नाड़ियों में प्रवाह करने वाला, गति देने वाला, अन्तरात्मा माना जाता है। परन्तु यह जो पिंड है इसका निर्माण करने वाला तो चेतन है। परन्तु देखो प्रकृति के तत्वों से निर्माण हुआ, और उन पंच भौतिक पिंड धारण करने वाला एकाकी आत्मा कहलाया गया है। मेरे प्यारे देखो , वह पंकृति के तत्व, जैसे यह पंच महाभौतिक पिंड और यह जो प्रकृतिवाद है इसको धारण करने वाला ब्रह्म है। जैसे ब्रह्म धारण करता है । उसी प्रकार यह आत्मा सूक्ष्म शरीर , सूक्ष्मता को धारण करता हुआ वह ब्रह्म की आभा को धारण करता हुआ ब्रह्म को जानता रहता है।

आज मैं विशेष चर्चा करने नहीं आया हूँ। मैं साधना की चर्चायें तो कल प्रकट करूँगा कि साधना मानव को किस प्रकार करनी चाहिए, मन और प्राण की साधना कैसे होती है। आज का तो विचार केवल यह है कि हम आत्मा को जानते हुए, परमात्मा की आभा को जानते हुए इस संसार सागर से पार होने का प्रयास करें जिससे बेटा ! हमारा मानवीय जीवन महान बनता चला जाए, पवित्र बनता चला जाए और पवित्रता को धारण करके इस संसार सागर से पार हो जाये। यह है बेटा! आज का वाक। आज के वाक उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि हमारे यहाँ दो प्रकार की मान्यतायें हैं-एक यौगिक है और एक रूढ़ि है परन्तु रूढ़ि को योग्यता में मिश्रण करने से मेरे प्यारे देखो ! एक सूत्र में पिरोने से एक माला बन जाती है जिसको धारण करने वाला मानव एक ऋषि बनता है और वह ऋषि ज्ञान और विज्ञान में रमण करता हुआ इस संसार सागर से पार हो जाता है। आज के वाक्यों का अभिप्राय है यह कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुण गान गाते हुए आत्मा में बलिष्ठता को लाना चाहिए, आत्मा को भोजन देना चाहिए। जैसे शरीर को भोजन दिया जाता है इसी प्रकार आत्मा को भी भोजन देना बहुत अनिवार्य है। आत्मा का भोजन परमात्मा का चिंतन है, ज्ञान है, दर्शन है। विराट स्परूप है । यह है बेटा! आज का वाक्य। अब मुझे समय मिलेगा तो शेष चर्चाएँ कल प्रकट करेंगे। अब वेदों का पाठ होगा इसके पश्चात यह वार्ता समाप्त हो जायेगी। **ओ३म ब्रह्मणा रेवम आभ्याम ऋषि गताः द्यौ जनाः ब्रह्म आपा ओ३म अग्नि माना व्यापा रथम दिव्या गतम माम देवस आप्याम नरो दधि ब्रह्म भू : आभा ।**